मासिक

चंद्रभागा संवाद

महिला संस्मरण विशेषांक



सुतीक्षण कुमार शर्मा 'आनंदम' की कृतियां

हिंदी कृतियां

तिनके और तिनके (हास्य व्यंग्य)	सितंबर 1966
देखतीं आकाश आंखें (कविता संग्रह)	दीपावली 1968
हम हैं बालक भारती (बाल कविताएं)	दिसंबर 1970
काम्प काम्प रहा चक्रबंधु (पद्य नाटक)	अक्तूबर 1972
नौका का इतिहास (पुरस्कृत कविता संग्रह)	जनवरी 1974
सांझे मंच पर (रंग नाटक)	जनवरी 1975
एलबेट्रास की हत्या (कालरिज के 'राइम आफ एंशिएंट मेरिनर' का नाट्य रूपांतर)	जनवरी 1977
आखरी पन्ने (पुरस्कृत नाटक संग्रह)	जुलाई 1981
कमल-पत्र पर डोलता जल-कण (कविता संग्रह)	मार्च 1984
कि वे बोलें (कविता संग्रह)	जून 1991
बाम के झरोखे से (1964 तक की प्रारम्भिक कविताएं)	अगस्त 1992
ताकन लागे काग (छः नाटक)	मार्च 1995
समर्पित आलाप (एकालाप कविता)	अप्रैल 1999
गीत हो कोई (कविता संग्रह)	दिसंबर 1999
सबरस दोहे (दोहा संग्रह)	जनवरी 2000
सबरस हाइकु (हाइकु संग्रह)	जनवरी 2001

डोग़री कृतियां

परसे दी खुशबू (नाटक)	अगस्त 1989
पनछान (पुरस्कृत नाटक 'सच्चा दे सरिस्ते' समेत दो नाटक)	अप्रैल 1990
ग़ज़ल : नमें छन्द (अनुसंधान पत्र-1 : सार)	मेई 1990
ग़ज़ल : नमें छन्द (अनुसंधान पत्र-2 : सार)	दिसंबर 1990
लैह्रें दे जाल (व्यंगी लघु कत्थां ते क्हानियां)	जुलाई 1992
ग़ज़ल : नमें छन्द (पुरस्कृत: भाग 1-2 समेत पूरा अनुसंधान)	मार्च 1993
सबरंग दोहे (दोहा संग्रह)	दिसंबर 1999
सबरंग हाइकु (हाइकु संग्रह)	सितंबर 2000

साक्षर प्रकाशन

402, अम्बफला, जम्मू (तवी)-180 005

(जम्मू-कश्मीर)

चंद्रभागा संवाद

वर्ष : 10 अंक : 2

फरवरी 2002

महिला संस्मरण विशेषांक

संपादक

मानसी शर्मा

सलाहकार

सुतीक्ष्ण कुमार शर्मा 'आनंदम'

व्यवस्थापक

श्रीमती सुदर्शन शर्मा

आवरण सज्जा

आनंदम

वार्षिक सहयोग : 50 रुपए

कार्यालय

402-अम्बफला
जम्मू (तवी) - 180 005
फोन : (0191)-562224

इस अंक में

'चंद्रभागा संवाद' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों इत्यादि से लेखक तथा कवि स्वयम् उत्तरदायी हैं। इनसे संपादक तथा प्रकाशक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

—संपादक

मुद्रक, प्रकाशक तथा स्वामी श्रीमती सुदर्शन शर्मा द्वारा क्लासिक प्रिंटर्स, बड़ी ब्राह्मणां, जम्मू (तवी) में छपा।

संपादिका : *मानसी शर्मा*

देश की एक मात्र महिला हिंदी संस्था

डॉ० एम० वरदराज

स्वतंत्रता के पश्चात ज्यों ज्यों हिंदी का प्रसार अहिंदी प्रदेशों में होता गया, स्वयंसेवी संस्थाओं की गतिविधियां व्यापक तौर से फैलती गयीं। कर्नाटक में भी हिन्दी सेवी संस्थाएं सक्रिय हो उठीं। कर्नाटक की चार हिंदी संस्थाएं-दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, मैसूर हिंदी प्रचार परिषद् एवं मैसूर रियासत हिंदी प्रचार समिति। इनमें कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति को देश की एक मात्र महिला हिंदी सेवा समिति होने का गौरव प्राप्त है।

सन् 1953 में एक छोटे से कमरे में 7-8 महिलाओं द्वारा किया गया ऐतिहासिक निर्णय आज विस्तृत महिला हिंदी सेवा समिति का रूप धारण कर सका है।

इस संस्था की संस्थापिकाओं में श्रीमती मुत्तुबाई माने, वनव्राकम्मा, शांताबाई, एन. सुशीला, एम. के अहल्या, शकुंतला बाई आदि का नाम प्रमुख है। 1958 में संस्था का विधिवत् पंजीकरण किया गया। तदोपरांत संस्था ने हिंदी परीक्षाएं शुरू कीं। सन् 1967 में मुख्य-मंत्री निजलिंगप्पा काल में संस्था की परीक्षाओं को स्थायी मान्यता मिल गई। अपनी प्रथमा, माध्यमा, प्रवीण, भूषण एवं साहित्यरत्न आदि परीक्षाओं के बाद 1983 में हिंदी में शिक्षक- प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम चलाया। इसका पाठ्यक्रम आगरा हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम, कर्नाटक सरकार का बी.एड. पाठ्यक्रम एवं राज्य के विश्वविद्यालयों के बी.एड. पाठ्यक्रमों को संयोजित करके तैयार किया गया है। आज महिला हिंदी समिति के छः महाविद्यालय बंगलौर, हुबली, रायचूर, बल्लारी, बेलगाम, एवं हासन में हैं।

आज संस्था के अनेक प्रचारक दक्षिण में हिंदी के प्रचार कार्य में जुटे हैं।

महिला हिंदी समिति का अपना प्रकाशन विभाग है और सन् 1968 से स्थापित मुद्रणालय। यहां विश्वविद्यालय एवं राज्य स्तर के स्कूल कालेजों की पुस्तकों का मुद्रण होता है। समस्त कार्य महिलाओं द्वारा ही किया जाता है।

समिति से प्रतिवर्ष औसतन 400 छात्र बी.एड. उत्तीर्ण होते हैं जब कि अन्य परीक्षाओं में एक लाख से अधिक छात्र छात्राएं 500 परीक्षा केंद्रों में परीक्षा देते हैं। ❑

राष्ट्रभाषा संदेश

सागर और आकाश का क्षितिज

डॉ० कृष्णा रैणा

प्रकृति के दोनों रूप पर्वत और सागर जीवन को उद्दामता देते हैं। हिमाचल के धौलाधार, चूड़धार, व्यास, रावी और सतलुज की अजस्र धाराएँ कितना सुरम्य प्रदेश है। यहीं रूसी चित्रकार श्री रोरिख ने सुन्दर चित्रों की परिकल्पना की है, यहीं सोभा सिंह की रचनाओं को गति मिली है। यहीं काँगड़ा की घाटियाँ और कुल्लू मनाली का अपार सौन्दर्य है। इस पर्वतीय सौन्दर्य को देखने के पश्चात् मुझे सागर की अथाह गम्भीरता को देखने का अवसर प्राप्त हुआ।

मेरी यात्रा जनवरी 1995 में आरम्भ हुई। शिमला में भयंकर ठण्ड थी। चारों ओर बर्फ की सफेद चादर के नीचे सारा शहर ऊँघ रहा था। हम छोटी रेलगाड़ी में सरकते-सरकते पर्वत से समतल में पहुँच गये। नई दिल्ली से केरल एक्सप्रैस से जाना था। प्लेटफार्म से ही नवीनता लग रही थी। यात्रा करने वालों में अधिकतर दक्षिण भारत के लोग थे। हमारी पहाड़ी पहचान कम होती जा रही थी। रेलगाड़ी चलने के समय से ही अंग्रेजी-माध्यम सब को निकट ला चुका था। वैसे दक्षिण भारत के लोग हिंदी भी बहुत बढ़िया बोल लेते हैं। सटीक संस्कृत शब्दों का प्रयोग उनकी हिंदी में अच्छा लगता है। इस रेलगाड़ी में चावल, साम्बर, केले के पकौड़े, उबले केले, कॉफी आदि सब मिलता है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु के पश्चात् हम उस प्रदेश में पहुंचे जहाँ के लिए एक कथा प्रचलित है कि विष्णु के अवतार परशुराम ने गोकर्णम् के सागर तट पर खड़े-खड़े अपने हाथ का परशु दक्षिण की ओर फैंक दिया था जो कन्याकुमारी में जाकर गिरा। वहीं सागर का जल हट गया और धरा निकल आई-यही प्रदेश केरल बना। इसे 'परशुरामक्षेत्र' भी कहा जाने लगा। वैसे यह नारियल, ताड़, सुपारी, केले और धान के हरे-भरे खेतों से भरा प्रदेश है। कहीं-कहीं लगता था कि रेलगाड़ी बस्तियों के बीच से निकल रही है और बच्चे हाथ हिला-हिला कर यात्रियों का अभिवादन कर रहे हैं। हम चौथे दिन इस प्रदेश की राजधानी तिरुवन्नन्तपुरम् पहुंच गए।

हम सचिवालय के पास ट्रिवेन्ड्रम होटल में रुके। हमारा स्वागत औषधि पानी से किया गया जो गर्म था। पता चला यह पानी स्वस्थ रखता है। सचिवालय के विशाल परिसर के पीछे सूचना विभाग का पुस्तक-केन्द्र था जहाँ से मैंने कई पुस्तकें ली।

अगले दिन महात्मा गांधी विद्यालय देखा। पास में ही मन्दिर, मस्जिद और चर्च का सामरस्य देखा जो इस शहर की विशेषता है। इस शहर का होटल 'माले'

प्रसिद्ध है। हमने श्री पद्मनाभ मन्दिर देखा। इतनी बड़ी मूर्ति पद्मनाभ की पहले कभी नहीं देखी थी। यह तीन द्वारों से दिखाई देती थी। इस मन्दिर के साथ ही राजाओं के आलीशान मकान और दाईं ओर बहुत बड़ा तालाब था जिसके चारों ओर सीढ़ियाँ बनी थीं। इस तालाब का नाम श्री पद्मतीर्थ है। मन्दिर नियत समय पर खुलता है। दर्शन के समय पुरुषों के लिए धोती पहनना आवश्यक है। मन्दिर के बाहर केरल के हस्तशिल्प की भिन्न-भिन्न चीज़ें मिलती हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा भी त्रिवेन्द्रम में है। वहाँ हमें केले के पत्ते पर चावल, साम्बर, सब्ज़ी आदि भोजन कराया गया। इस सारे वातावरण में कितना अपनत्व था। डा. तंकमणि अम्मा का प्यार और सौहार्द भुलाया नहीं जा सकता। उनके साथ हमने म्यूज़ियम में रूसी चित्रकार रोरिख के चित्र देखे परन्तु मुख्य रूप से वहाँ राजा रवि वर्मा के बनाये चित्र ही सुशोभित हैं। राजा रवि वर्मा के चित्र उत्तर भारत में भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। उनका सौंदर्यबोध अलग चीज़ है। राजा रवि वर्मा के चित्र और उसकी भूमिका पुस्तक रूप में पाना सचमुच एक उपलब्धि है। डा. चन्द्रशेखरन् नायर, डा. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर, डा. एन. रवीन्द्रनाथ और डा. तंकमणि अम्मा से मिलकर प्रसन्नता हुई। ये विद्वान जितना मलयालम पर अधिकार रखते हैं उतना ही हिंदी पर भी।

त्रिवेन्द्रम से हम कन्याकुमारी गए जहाँ धरती और आकाश का क्षितिज नहीं अपितु सागर और आकाश का क्षितिज है। सागर अपनी उद्दाम तरंगों से धरती के पवित्र चरण चूम रहा है। पुन: उतर कर फिर पाद प्रक्षालन कर रहा है। कन्याकुमारी की इस त्रिवेणी पर अरब सागर, हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी के जल का संगम है। भारत के सुदूर दक्षिणी तट पर स्थित कन्याकुमारी की चिर कुमारी महादेव को पाने के लिए तपस्या कर रही है जो उत्तर में हिमगिरि से ऊँची चोटी पर समाधिस्थ माने जाते हैं।

कन्याकुमारी से ही स्टीमर में 'विवेकानंद रॉक टेम्पल' के दर्शन भी किये। इस मन्दिर की कल्पना अपने आपमें एक विराट आयोजन है। विवेकानन्द जी की भव्य प्रतिमा हर आत्मा को सन्देश देती है। ध्यान कक्ष में मनुष्य सारे सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है और ध्यानयोग में ओंकार का साक्षात्कार कर अंतरात्मा के प्रकाश से परिपूर्ण होता है।

पांच बजे मंदिर बन्द होना था अत: मन ही मन इस महान आत्मा का अभिवादन कर हम स्टीमर से वापस आ गये। सागर के जल पर सूर्य की सुनहली आभा चमक रही थी। धीरे-धीरे सूर्य का सुनहरा आकार सागर में विलीन हो गया, अगली प्रात: को फिर

उदय होने के लिए। रात्रि हमने वहीं व्यतीत की–विवेकानंदपुरम् के वातावरण में। प्रातः वहीं से सूर्योदय देखकर सुचिन्द्रम मंदिर की ओर चल पड़े। यह मंदिर भव्य कला का प्रतीक है। शंख की बड़ी नन्दी की प्रतिमा और तेरह फुट ऊँची काले पत्थर की हनुमान जी की मूर्ति। मुख्य सड़क से मंदिर तक के मार्ग के दोनों ओर लोगों ने चावल के आटे की विभिन्न प्रकार की रंगोली घर के बाहर बनाई हुई थी। प्रातः की सुमधुर किरणों में बैठ कर वे मानों हमारा स्वागत कर रहे थे और दूर तक हमें देखते जा रहे थे, एक अनजान पहचान की प्रतीक्षा में। इस मंदिर का परिसर बहुत बड़ा है और इस की मूर्तिकला अपने समय की सांस्कृतिक भव्यता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

अगला पड़ाव था कोचीन। कोचीन विश्वविद्यालय का अतिथि गृह, हिंदी विभाग, डा. अरविंदाक्षण और डा. देवकी का अपनत्व मुझे सदैव स्मरण रहेगा। विश्वविद्यालय परिसर के पास का तिक्काक्कय मंदिर जिसे त्रिक्काय मंदिर भी कहते हैं, यहाँ का अकेला वामन का मंदिर है। इसके साथ ही शिव मंदिर भी है। 'ओनम' के समय इसी मंदिर से सारे उत्सव आरम्भ होते हैं। यहीं से हाथियों पर देवताओं को परिक्रमा के लिए निकाला जाता है और यहीं 'कलमश्री' से बाईस किलोमीटर दूर 'कालड़ी' में पेरियार नदि के किनारे के गाँव में अद्वैत दर्शन के संस्थापक आदि शंकराचार्य का जन्म हुआ था। यहीं पर शंकराचार्य पीठ पुस्तकालय और संस्कृत विश्वविद्यालय है। यहीं से शंकराचार्य जी आठवीं शताब्दी में कश्मीर के शैव आचार्यों से शास्त्रार्थ करने कश्मीर आए थे जिसका प्रतीक श्रीनगर का शंकराचार्य मंदिर है। कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार सम्राट अशोक के पुत्र जलौक ने इस मंदिर की स्थापना की है और यहीं शिव जी और शंकराचार्य जी की मूर्तियाँ हैं। भारत में यह सांस्कृतिक प्रतीक प्राचीन समय से मिलते आ रहे हैं।

मध्य केरल में 'तृश्शूर' ज़िले में 'गुरू वायूर' स्थान पर श्री कृष्ण मंदिर है। 'गुरू' और 'वायु' के द्वारा प्रतिष्ठापित होने के कारण इस मंदिर का नाम 'गुरूवायूर' मंदिर पड़ा है। यहाँ श्री कृष्ण को 'गुरूवायूरप्पन' भी कहते हैं। 'बिल्वमंगलम्' इस मंदिर के प्रमुख कृष्णभक्त थे। इस के साथ ही यहाँ की कृष्णभक्ति काव्यधारा जुड़ी है। यहाँ शंकराचार्य जी भी आए हैं। 'मेल्युतूर नारायण भट्टतिरि ने इसी मंदिर से जुड़ कर 'नारायणीय' की रचना की है। यहाँ की कथकली विशेष रूप से प्रसिद्ध है। उत्तर केरल में 'तेय्यम' प्रचलित है जिसमें देवताओं की भाँति वेशभूषा पहन कर नाट्य किया जाता है।

'विषित्रम' का बन्दरगाह प्राचीन काल से ही पूरे देश को आकृष्ट करता आ रहा है। इसी में स्थित कोवलम् समुद्र तट आज समस्त संसार के पर्यटकों को आकृष्ट करता है। यहाँ चट्टानों की पंक्तियाँ समुद्र की ओर हैं और समुद्र की उद्दाम

तरंगें इन्हीं चट्टानों से दिन-रात टकराती हैं। कोवलम की सागर तरंगे उठ-गिर कर मनुष्य को शायद बताना चाहती हैं कि प्रकृति मनुष्य से अधिक शक्तिशाली है। कोवलम् की धरा पर ही 'रामकथा प्यारटु' की रचना की गई है। त्रिवेन्द्रम् और कोचीन के घरों की बनावट में 'आर्किटेक्ट' मिस्टर बेकर का योगदान है। यह आर्च-सिस्टम बहुत पुराना है। इसको गोथेक डिज़ाइन भी कहा जाता है जो चर्चों में विशेष रूप से मिलता है।

केरल के दृश्यों से सराबोर होकर हम शिमला की ओर ध्यान देने लगे। वही रेलगाड़ी का लम्बा सफ़र कॉफी की महक, चावल और साम्बर का स्वाद लेकर हम वापस आ रहे थे। केरल में जो मोटा लाल चावल और मच्छली हमने खआई वह हमें बचपन के दिनों के कश्मीरी ज़ग बतअ (मोटा लाल चावल) और मच्छली के स्वाद की याद दिलाने लगा। तीन दिन और तीन रातें यात्रा करके केरल एक्सप्रेस से दिल्ली और कालका मेल से कालका तथा छोटी रंगीन, हिमालियन-क्वीन से शिमला पहुँच गए। शिमला में बर्फ जम चुकी थी। धुँधला वातावरण बन चुका था। लोग कमरों में बन्द 'बलोअर' या अँगीठी लेकर अपने को गर्म करने का प्रयत्न कर रहे थे और मैं इस सारी यात्रा का आनंद मन ही मन लेकर कागज़ के पन्नों पर उतार रही थी। आज संस्मरण पत्रिका में भेजते हुए वे क्षण अभी भी ताज़ा और जिन्दा हैं और मेरे नेत्रों के सामने वही उद्दाम तरंगें तथा हिमाच्छादित ऊँचे पर्वत हैं। □

372-शास्त्री नगर, जम्मू (तवी)- 180 004

रामचंद बाबा जी

कृष्णा गुप्ता

जम्मू शहर में मस्तगढ़ मोहल्ले के सामने 'नयनों शाह की गली' को कौन नहीं जानता। नयनों शाह, घी वाले तीन भाई थे। इनकी माता जी ऊंचा सुनती थी परंतु ये मातृ-भक्त उनकी सेवा जी-जान से किया करते थे। कठिनाई होते हुए भी प्रतिदिन रामायण सुनाया करते थे। इन तीनों में से सब से छोटे भाई को ही हम 'रामचंद बाबा जी' के संबोधन से बुलाया करते थे। पुरातन विचारों के धार्मिक परिवार थे ये। इनके घरों में सभी त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाए जाते थे।

नवरात्रों में इनके हां सात्विक आनंद का समा बना रहता था। दुर्गा-अष्टमी के पावन अवसर पर सैंकड़ों कंजकों का पूजन किया जाता था। रामनवमी को श्री रघुनाथ मंदिर में लड्डुओं का प्रसाद महाराजा की ओर से बांटा जाता था तो रामचंद बाबा जी के घर पर मीठी सेवियों का प्रसाद बंटता था। झोली भर भर मीठी सेवियां लेने वालों का सुबह से ही तांता लग जाया करता था और शाम तक अपना क्रम बनाए रखता था।

जन्माष्टमी भी पूरी श्रद्धा से मनाई जाती थी। न जाने कहां-कहां से झांकियों का सामान इकट्ठा किया जाता और संपूर्ण कृष्ण-लीला सजीव हो जाती थी। पूरा घर इन झांकियों से सुसज्जित हो जाता। वसुदेव-देवकी द्वारा जेल में बंदी अवस्था में कृष्ण जन्म से लेकर हर प्रकार की लीला, राक्षसों का बध, पूतना का स्तन-पान कराना, बाल-गोपाल संग माखन की चोरी, गोपियों का कृष्ण के प्रति अमित प्रेम, यशोधा और नंद का वात्सल्य, अर्जुन की मित्रता, कालिया नाग को नथना, घोर वर्षा होने पर गोवर्धन पर्वत उठाना इत्यादि सब जीवंत हो जाता था। मंत्र-मुग्ध हम एक एक झांकी निहारा करते थे।

कृष्ण भगवान् का संपूर्ण जीवन हमें इन झांकियों में दिख जाता था। गीता समझ में आए न आए, रथ पर शस्त्र छोड़ कर खड़े अर्जुन और उपदेश देते कृष्ण मन-मस्तिष्क पर अपनी अमिट छाप छोड़ देते थे। एक ऐसी छाप जिससे कृष्ण की छवि आँखों में समाई रहती। ताज़ा गुलाबों के गुलदस्तों की सजावट से और गुलाबी सुगंध से अलौकिक वातावरण बन जाता और सभी उसमें खो जाते।

यहीं पर कीर्तन के लिए रात्रि-जागरण होते और उनमें हम बच्चे भी भाग लेते। सवैयों की प्रतियोगिता जैसी हो जाती। संगीतज्ञों के समागम में क्या समय बंधता, वर्णन करना कठिन है। यह वह समय था जब कुंदन लाल सहगल, और उनके साथी संगीत साधना करते थे। बाज़ार के सिरे पर एक छोटा-सा विद्यालय था जो रात होते ही सजीव हो उठता था। वैसा संगीत सुनने को आज भी मन लालायित होता है। बाबा जी सब से बुजुर्ग शिक्षक थे। रात्रि जागरण के दिन तो हम सब के उत्साह का अंत ही न होता था और न ही घर के लोग हमें इन जागरणों में जाने से रोकते थे।

सब बच्चे बाबा जी के दीवाने थे। हर शाम को हम सब लड़कियां उनके यहां पहुंच जाया करती थीं। भजन और रामायण-गान हमने वहीं से आरम्भ किया। बाबा जी से सीखे हुए भक्ति-रस-गीत आज भी ज्यूं के त्यूं याद हैं। कितनी मधुर है उनकी धरोहर ?

कई बार बाहिर से संगीतज्ञ आते तो ये संगीत सभाएं और भी ज़ोर-शोर से चलने लगतीं। कभी-कभी मथुरा-वृंदावन से कुछ अंग्रेज़ साधक भी आते जो नृत्य कर कर के कीर्तन किया करते थे। महाशिवरात्री को भी रात भर हम लोग पूजा में लीन बैठे रहते थे।

विवाह के उपरांत झांकी देखने के लिए यदि हम देर से पहुंच पाते तो बाबा जी स्नेह भरा हाथ सिर पर रख कर कहते, 'बेटी ! तूने देर क्यों कर दी ? देखो, अभी तक मैंने एक भी झांकी नहीं हटाई। तुम्हारी इंतजार थी मुझे।' सुनते ही मेरी आंखों में आंसू आ जाते।

बाबा जी का भक्तिमय स्वर्ग सारे तन-मन पर इस भांति छाया रहता था कि अब लगता है, उस समय के मुकाबिले में हम कितने नीरस हो चुके हैं। मन की उत्कंठा अच्छे से अच्छा गीत लिखने को प्रेरित करती है। लगता है हर गीत उस देवपुरुष का प्रसाद है। आज ईश्वर तत्त्व पर मनन, स्वाध्याय और चर्चा करते रहने में आनंद आता है।

मथुरा-वृंदावन की यात्रा बाबा जी हमेशा करते थे। एक बार ऐसी ही एक यात्रा से लौटे तो भक्तिरस घोलने वाली उनकी मधुर आवाज़ खामोश हो चुकी थी। एक महीना इसी प्रकार रुग्ण रहने के बाद उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया।

बाबा जी चर्म-रोगों की औषधियां भी बनाया करते थे। चिकित्सा का लाभ उठाने के लिए कई लोग इनके पास आया करते थे। आज भी उनके सुपुत्र श्री बाल कृष्ण लोगों को चर्म रोगों की दवाइयां बना कर दिया करते हैं।

यद्यपि वे संगीत सभाएं, कृष्ण लीला की झांकियां, रामनवमी की सेवियां, नवरात्रों में कंजक-पूजन उस तरह का अब कहीं नहीं दिखाई देता। काश! उस समय को पकड़ क वापिस ला पाती और सब को दिखा पाती।

वह एक स्वर्ग था जिसमें हमारा बचपन नहाता रहा। वह एक देवता था जिसका साया इतना वृहद था कि जैसे गोवर्धन पर्वत और उसके नीचे हमारी नन्हीं मानसिकता कई अलौकिक जिज्ञासाओं को लेकर पनपती रही। जिनके अर्थ रात्रि को आकाश के चांद सितारों में, सागर की लहरों में विशेषकर जम्मू शहर के चरणों में बहती कल कल करती तवी नदी के ठंडे जल की धारा में तलाश करती रही जो तलाश आज भी जारी है, जिससे कविताओं के दोनों में दीप धर-धर कर प्रवाहित करती हूं। जैसे गंगा में संध्या के समय भक्तजन किया करते हैं। ये सारे गीत उन देवपुरुष के नाम जिनके प्रसाद-स्वरूप इनका जन्म होता रहता है। □

26-बी/बी गांधीनगर, जम्मू (तवी) - 180 004

सृजनात्मक ऊर्जा प्रदान करतीं स्मृतियां

डॉ. चंचल डोगरा

घर तक पहुँचने के लिए जिस लम्बी गली से होकर गुज़रना पड़ता है वह मुझे हमेशा नागवार लगती रही है पर उस दिन तो वह गली समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही थी। 83 अप्रैल की बात है, अज्ञेय जी को रात्रि-भोज के लिए घर

पर आमंत्रित किया था और हम गली से गुज़र रहे थे। लगता था कि गली रबड़ की नाईं खिंचती चली जा रही है। गली के मोड़ों में वृद्धि ही होती चली जा रही थी। उफ़्फ़! यह नामुराद मोड़ न जाने कब समाप्त होंगे? लगता था कि एक में से दूसरा खिंचता चला आ रहा है।

गली में दोनों ओर घरों के बाहर कूड़े के ढेर देखकर लोगों की 'सिविक सेंस' (Civic Sense) पर गुस्सा भी आ रहा था। यद्यपि आज भी वह गली उतनी ही बड़ी है। न सूत भर घटी है, न ही बढ़ी है। आज भी घरों के बाहर कूड़े के ढेर लगाने का अंदाज़ वैसा ही है पर उस दिन तो लोगों पर गुस्से के साथ ही साथ अपने पर शर्मिंदगी भी बहुत हो रही थी।

जिस ड्राईंग रूम में हम सब बैठे थे, आज भी जब वहाँ बैठती हूँ तो वात्स्यायन जी के वहाँ होने का आभास होता है। वस्तुत: जहां भी व्यक्ति समय गुज़ारता है वहां वह अपनी पहचान छोड़ जाता है। उसके व्यक्तित्व की, सोच की रश्मियां हवा में तैरती रहती हैं। आज भी मुझे कई बार लगता है कि वात्स्यायन जी के व्यक्तित्व की किरणें यहीं तैर रही हैं। वह यहीं हैं, यहीं कहीं हैं, मुझे स्पर्श कर रही हैं- वे किरणें-सुखद स्पर्श करती किरणें।

डिनर के पश्चात् अज्ञेय जी ने क्षीर चाय (काश्मीरी नून चाय यानि नमकीन चाय) की इच्छा हल्के से जतलायी थी। हमने डोगरी तरीके से चाय बनाकर (डुग्गर प्रदेश में चाय में नमक के साथ चीनी भी डाल देते हैं) उसमें मलाई डाली और सम्मुख रख दी थी। इसकी कसक अब तक महसूस करती हूं कि पहले ही क्यों नहीं पूछ लिया। 'पाइनेपल-सूफले' बनाया था। बड़े स्वाद से खा रहे थे। वे जब और लेने लगे तो यह सोचकर कि ज़्यादा चिकनाई वाला है, ज़्यादा खा लेने से उन्हें खराब लगेगा, मैंने टोक दिया था। इस पर उन्होंने कहा कि 'कोई बात नहीं, मैं दवा खा लूंगा। यह तो विदित है कि वात्स्यायन जी स्वास्थ्य के लिए बड़े से बड़ा परहेज़ भी कर लेते हैं। मेरा मान रखने के लिए ही उन्होंने ऐसा कहा होगा। यह उनका सहज अभिजात्य था।

भारत--कोकिला से जब अज्ञेय जी का परिचय एक कवि के रूप में करवाया गया तो अज्ञेय जी के शब्दों में, वे मुस्करा कर मेरा कन्धा थपथपाते हुए बोलीं, 'हां, यह बात हुई न। कवि को कवि जैसा दिखना चाहिए। .... वह क्या तुम्हारे मरथिल्ले से और बाल बढ़ाए हुए लोग आ जाते हैं और कहते हैं कि मैं कवि हूँ। स्वस्थ और सुरूप नहीं होगा तो कहां का कवि।'

भारत-कोकिला की इस प्रशस्ति के प्रसाद से अज्ञेय निरन्तर कविता लिखते

चले गए और उन्होंने माना "और कवि स्वस्थ, सुरूप और देह से समर्थ हो, यह मुझे भी अच्छा लगता है, भले ही यह नहीं कहूँगा कि इसके बिना कवि नहीं हो सकता।" (स्मृति लेखा, पृष्ठ 21-22 प्रथम संस्करण 1982) इस प्रसंग का उल्लेख स्वास्थ्य के प्रति उनकी धारणा को जतलाने के लिए कर रही हूँ। वैसे भी उनके चुम्बकीय आकर्षण से कोई बिरला ही होगा जो प्रभावित न हुआ होगा।

मन में एक टीस अक्सर उठती रहती है। वात्स्यायन जी बागे-बाहू से सूर्यास्त देखना चाहते थे। मानसर शिविर से लौटते वक्त कुछ प्रतिष्ठित लेखक व कवि विद्यानिवास मिश्र के बिना सर्वश्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, विपिन अग्रवाल, प्रयाग शुक्ल, अजित कुमार, रमेशचन्द्र शाह, कीर्ति चौधरी, ज्योत्स्ना 'मिलन' आदि मिलकर रघुनाथ बाजार से खरीददारी करने चले गए थे। वहाँ देर हो जाने के कारण हम सूर्यास्त के समय पर बागे-बाहू नहीं पहुँच पाए थे।

अज्ञेय को एक बार उनकी कविताओं की रिकार्डिंग के लिए मैंने एक 'कैसेट' दी थी और देकर लगभग भूल भी चुकी थी। मानसर शिविर में उन्होंने मुझे तीन कैसेट्स दीं और कहा कि इन्हें किसी को दीजिएगा नहीं क्योंकि 'रिकार्डिंग' के लिए मैं अढ़ाई घंटे 'स्टूडियों' में बैठा हूं।'

कहां सोच सकती थी कि अज्ञेय जैसा साहित्यकार मेरे लिए इतना समय निकालेगा और एक 'कैसेट' मूल के साथ दो 'कैसेट' सूद भी मुझे देगा। मैं उत्साह और खुशी के मिले-जुले भाव में डूबी हुई थी कि आवाज़ सुनाई दी, 'अच्छा, बतलाइये चंचल जी, आज शाम कौन सी कविताएं सुनाऊं।' उसी भावावेश में खोए हुए मैंने कहा 'कोई भी सुना दीजिए। मुझे तो आपने अभी-अभी अपनी पसंदीदा कविताओं की 'कैसेट्स' दी हैं।'

–अच्छा ! तो अब मेरे काव्य-वाचन का आपके लिए कोई महत्त्व नहीं रहा ?

मुझे तत्काल अपनी भूल का एहसास हुआ। क्षमा माँग कर सफाई देनी चाही पर उन्होंने कहा, 'नहीं-नहीं, कोई बात नहीं। मैंने तो यूं ही कहा।'

वे जान गए थे कि कविताओं की कैसेट्स पाकर मैं इतनी गद्‌गद् हो गई थी कि उन पलों में शायद उनके काव्य-वाचन के ही इर्द-गिर्द घूम रही थी। ऐसी उदारता अब कहाँ ?

उन दिनों मैं छः डूप्लेक्स में ठहरी थी। वहीं से वात्स्यायन जी को फोन किया था। उन्हें तब 'हार्ट' की तकलीफ हुई थी और वे विश्राम कर रहे थे। पूछने लगे- 'कहां ठहरी हैं आप, मैं लिवाने आता हूँ।'

अब नहीं जानती कि उस वक्त क्या उत्तर दिया होगा मैंने। इस विनम्रता से मैं इतनी हतप्रभ हो गई थी कि केवल यही कह पाई थी 'आप मुझे घर की 'लोकेशन' समझा दीजिए मैं स्वयं आ जाऊँगी।'

साधारणतया ये स्मृतियाँ बड़ी साधारण और छोटी-छोटी लगती हैं परंन्तु सृजनात्मक ऊर्जा को जिजाए रखने में इनका ही महत्त्वपूर्ण योग रहता है, ऐसा मैं समझती हूँ। ☐

प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कालेज फॉर वूमन, अनंतनाग (कश्मीर)

अतीत के झरोखे से

डॉ० कौशल्या वल्ली

पञ्चम श्रेणी तक अपने घर के निकट, श्रीनगर में एक असर्वकारीय विद्यालय में अध्ययन करने का अवसर मिला। वहां शिक्षक व शिक्षिकायें- दोनों पढ़ाते थे। पढ़ाते ह्दय से थे। पाठकों के ह्दय में बात घर कर जाती थी।

पिता जी का तबादला जम्मू प्रदेश के नौशहरा (सुन्दरबनी के पास) में हुआ था। लौटने पर मैंने अपनी इच्छा, घर से कुछ दूर स्थित विद्यालय में प्रवेश पाने की प्रकट की।

मेरा यह विद्यालय सत्थू बरबरशाह में स्थित था। श्रद्धास्पद प्रात: स्मरणीय दिवंगत 'मास्टर ज़िन्दा कौल' जी विद्यालय से सम्पर्क जोड़े हुए थे या यों कहें कि विद्यालय में अत्यन्त आदरणीय 'मास्टर जी' ने अपना आना जाना जारी रखा था। नवीं, दसवीं कक्षा के छात्रों को आंगल भाषा पढ़ाते थे। केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए नहीं, अपितु भाषा के भली प्रकार ज्ञान के लिए।

विद्यालय के दिनों 'मास्टर जी' के दर्शन तो करती थी। शान्त, आध्यात्मिक तेज से ओत-प्रोत उनका चेहरा, अधिकांश में मौन रहने के आदी, किन्तु आवश्यकता के समय ज़रूरत के अनुसार खुल कर बोलना, ऐसा देखने में आता था।

एम. ए. कक्षा में आने के पश्चात् मैंने अपने पूज्य पिता जी के दफ़्तर में 'मास्टर जी' को देखा। पिता जी और 'मास्टर जी' का समय-समय पर एक दूसरे के घर में मिलना होता था और इस प्रकार पर्याप्त समय के बाद विधि ने मुझे मास्टर जी के दर्शन करवाए।

तदोपरांत जम्मू विश्वविद्यालय में अध्यापन करने का अवसर मुझे मिला। दिवंगत, आदरणीय जानकीनाथ जी बख्शी से ज्ञात हुआ कि ''मास्टर जी'' का निवास अब जम्मू में है। तो समय-समय पर उनके जहां आना जाना होने लगा।

एक अंग्रेज़ी कविता का हिन्दी में मैं अनुवाद कर रही थी। मास्टर जी बोले, 'अनुवाद करते समय एक बात का ध्यान रखना होता है : शब्दों का युक्तियुक्त पर्यायवाची ढूंढना चाहिए। नहीं तो अनुवादक को विश्वसनीय नहीं करार दिया जाता। उनके शब्द थे-'ए ट्रानसलेटर इज़ ए ट्रेटर' (A translator is a Traitor)'

जम्मू में ही कुछ समय के पश्चात् मास्टर जी ने देह त्याग दी। उन की आत्मा को अनन्त प्रणाम।

महाविद्यालय में आंगल भाषा के प्राचार्य प्रो० रामचन्द्र पंडित अपने विषय पर पूर्ण अधिकार के लिए प्रसिद्ध थे। आंगल भाषा के वाक्य मौखिक बोलते थे जिन्हें छात्राओं ने लिखना होता था। लिखने में अशुद्धियाँ निकालते हुए वह कई बार कहा करते थे, 'कट योर टी एंड डाट योर आई (Cut your t and dot your i)' अर्थात t (टी) वर्ण लिखते हुए ऊपर लकीर से काटना न भूलें तथा i (आई) लिखते समय ऊपर बिंदु डालना स्मरण रखें। इस प्रकार उन से पढ़े हुए छात्र सदा प्रोफेसर पंडित की बात को स्मरण रखते थे या यूँ कहें कि लिखते समय उपरोक्त वाक्य उनके छात्रों की स्मृति में सदैव आया रहता।

विश्वविद्यालय में अध्ययन के दिनों, घर से दूर, छात्रावास में रहते हुए, एक छात्र को बहुत अनुभव होते हैं। विभिन्न प्रदेशों से, विभिन्न परिवारों में पले हुए विभिन्न स्वभाव के छात्र आरम्भ में तो झिझकते हैं किन्तु समय व्यतीत होने पर छात्रावास को ही घर समझने लगते हैं। रोटी, कमरा, स्नानागार आदि का सबके लिए एक साथ प्रबन्ध होता है। वातावरण सिखाता है मानव को कि कैसे रहें, कब क्या करें। छात्र पर संगत का प्रभाव भी जाने अनजाने पड़ जाता है। छात्रावास की देखभाल करने वाली महिला, समय समय पर कहती रहती हैं-'अच्छी संगति तारती है, कुसंगति मारती है।'

अनुसन्धान के दिनों, हमारा विश्वविद्यालय द्वारा चालित छात्रावास अवकाश के दिनों पूरा ब़न्द रहता। अनुसन्धित्सुओं को अपना प्रबन्ध करने को कहा जाता। मुझे आरम्भ में दिवंगता श्रद्धास्पद महादेवी वर्मा जी द्वारा संचालित 'प्रयाग विद्यापीठ' में अवकाश के दिनों रहने का अवसर मिला। वे अनुशासन प्रिय थीं। कहने लगीं-'आवश्यक नहीं कि हर दिन पुस्तकालय में जाओ। सप्ताह भर के लिए सामग्री ढूंढने के लिए, सम्बद्ध पुस्तकें, कमरे में बैठ के पढ़ने के लिए लाओ।'

महादेवी जी घर में दूरभाष (टेलीफोन) रखने के पक्ष में नहीं थीं। उनके अनुसार दूरभाष के होने से स्वकर्त्तव्य में पर्याप्त विघ्न आते हैं।

उनके निवास-स्थान के प्रांगण में तरह-तरह के पुष्प खिलते थे। फूल तोड़ने की अनुमति नहीं थी। वे कहा करतीं, 'फूल पेड़ पर ही अच्छे लगते हैं। इन का सौन्दर्य वृक्षों पर ही निखरता है।'

विश्वविद्यालय के छात्रावास में जन्माष्टमी, होली, शिवरात्रि, रक्षा बंधन जैसे त्यौहार हर्ष और उल्लास से मनाये जाते थे।

छात्र जगत् द्वारा संचालित समाज सेवक संघ (Social Service League), प्रयाग विश्वविद्यालय में किसी वरिष्ट प्राचार्य/प्राचार्या की देख रेख में चलता था। कुम्भ मेले में तथा अन्य पर्वों पर हम सभी सदस्य, यथायोग्य सेवा करने के लिए तत्पर होते थे तथा भारत के हर प्रदेश से आए हुए यात्रियों के दर्शन करने को पाते थे। घर से दूर, छात्रावास में रहना, लड़के/लड़की को आत्म-विश्वास और आत्मनिर्भरता का प्रशिक्षण देता है।

प्राध्यापिका के तौर पर युवा छात्र जगत् से मिलने का अवसर, सिखाने का अवसर तथा स्वयं सीखने का अवसर प्राप्त होता है। जीवन यात्रा विभिन्न अनुभवों की यात्रा है। जीवन के हर श्वास में मानव शिक्षा ग्रहण करता है। केवल पुस्तकों से समझा हुई शिक्षा नहीं; जीवन में अर्जित अनुभवों से प्राप्त शिक्षा। ☐

20-राजेंद्रनगर, नहर, जम्मू (तवी) - 180 001

आखिर क्यों

मानसी शर्मा

पिछले कई दिनों से मुझे सिर में हल्का-हल्का सा दर्द हो रहा था। घर में सभी ने कहा कि डाक्टर को दिखाना चाहिए। इसी सिलसिले में मुझे अस्पताल जाने की ज़रूरत पड़ी। मेरे साथ मेरे पति विवेक थे। अभी हम लोग वहां पहुंचे ही थे कि पता चला 'अभी डाक्टर बिज़ी है, इन्तज़ार करना होगा।'

सामने टी. वी. लगा था। हम लोग देखने ही लगे थे कि अचानक मेरी नज़र सामने बैठी एक लड़की पर जा पड़ी। उसे देखते ही मैं गहरी सोच में पड़ गई, 'यह लड़की .... वही तो है .... किन्तु .... ?'

उसका लिबास देखकर मैं हैरान थी। छोटी सी कमीज़, उसके साथ पैरेलर और कटे हुए बाल। वैसे तो यह लिबास कोई बुरा नहीं था। फैशन है और लड़कियां फैशन तो करती ही हैं किन्तु जिसको आपने हमेशा किसी सादी सलवार-कमीज़ में देखा हो वह ऐसी पोशाक पहने हुए दिखाई दे, हैरानगी तो होगी ही।

मैं उससे नज़रें बचा रही थी क्योंकि जब कभी कालेज में वह मुझे देखती थी तो झट से मेरे पास आ जाती थी। परिणाम यह निकलता था कि समझो अब गया आपका कम से कम आधा घण्टा। इसलिए मैंने यही ठीक समझा कि उसकी तरफ बिलकुल नहीं देखूंगी।

मैं टी. वी. पर आंखें लगाए रही मगर मन में एक प्रश्न उठ रहा था कि इसमें इतना बदलाव एकदम क्यों और कैसे आ गया ?

समाचार चल रहे थे। अचानक वह ज़ोर से हंस दी मानो समाचार न हो, कोई 'कामेडी-सीरियल' चल रहा हो।

मैं हैरान परेशान उससे नज़रें भी बचा रही थी और उसे देख भी रही थी।

अचानक मेरी नज़र उससे मिल गई लेकिन मैं एकदम आगे पीछे देखने का डोंग करने लगी। तभी मुझे विचार आया कि 'इसने मुझे देखा भी किन्तु पहचानने से इन्कार कर रही है। कालेज़ में तो यह जब कभी मुझे दूर से भी देखती थी तो एकदम बुला लिया करती थी। आज इसने ऐसा क्यों किया ? कहीं ऐसा तो नहीं कि इसने भी मेरी तरह सोचा और किया हो ?'

'नहीं, नहीं! ऐसा नहीं हो सकता। मेरा तो विवाह हो चुका है। शायद इसीलिए नहीं पहचान पाई है।' मन में अनेकों सवाल थे और फिर उन्हीं के जवाब भी।

मैंने सोचा क्यों न विवेक से बात की जाए। मैंने उनकी तरफ देखा तो वह पहले से ही मेरी तरफ देख रहे थे। शायद समझ भी रहे थे कि मैं किसी उलझन में हूँ। मेरे से जैसे ही उनकी नज़र मिली, एकदम बोले, 'क्या प्राब्लेम है?'

– 'कुछ नहीं।' मैंने कहा।

– 'कुछ तो है', उन्होंने फिर से कहा तो मेरे से रहा नहीं गया। मैंने एकदम पूछा, 'आपको वह लड़की कैसी लग रही है ?'

– 'ठीक है। अच्छी खासी लड़की है।'

– 'मैं उसे जानती हूं।'

– 'तो ?' उन्होंने पूछा।

– 'वह एकदम सादी सी लड़की थी। किसी में इतना बदलाव कैसे आ सकता है ?'

– 'आ सकता है, इसमें कोई बड़ी बात नहीं।'

इसी बीच मेरी उससे एक बार फिर नज़र मिल गई। लेकिन इस बार मैंने नज़र चुराई नहीं बल्कि उसकी तरफ देखती रही। मगर यह क्या ? उसने दोबारा मुझे 'इगनोर' किया।

अब उलझन और बढ़ चुकी थी। मैंने फिर विवेक से कहा, 'देखो........ वह मुझे पहचानने से इन्कार कर रही है।'

'हो सकता है वह तुसमे बात न करना चाहती हो। फिर ज़रूरी भी तो नहीं है कि हर लड़की तुम्हें हमेशा की तरह पसन्द करे,' उन्होंने मज़ाक में कहा और हंसने लगे। मैं चिड़ गई।

इतने में मेरी नज़र उसके साथ ही बैठे व्यक्ति पर पड़ी जो काफी साधारण जैसा लग रहा था, 'अच्छा, तो यह इसके पिता हैं। पिता ही हो सकते हैं। शक्ल भी मिल रही है।'

अचानक वह उठा और रिसेप्शनिस्ट के पास आया, 'डाक्टर आ गए क्या ?' उसने पूछा।

रिसेप्शनिस्ट ने कहा, 'हाँ बैठो।'

उसने आगे कहा, 'सुना है, बहुत अच्छे डाक्टर हैं।'

- 'हां, आपने ठीक ही सुना है।'

उसी समय 'रिसेप्शनिस्ट' ने पास खड़े चपरासी से कहा, 'श्याम! इनको डा. अनीत के पास ले जाओ।' और वे लोग श्याम के पीछे-पीछे चले गए।

मेरे दिमाग में अभी तक खटखटी लगी हुई थी। अपनी जगह से उठी और रिसेप्शनिस्ट से पूछने लगी, 'एक्सक्यूज़ मीं! यह जो लड़की आई थी, किस डाक्टर के पास गई है?'

मैं जानना चाह रही थी कि आखिर उसे क्या 'प्राबलेम' है। 'रिसेप्शनिस्ट' ने मेरी तरफ देखा और बोली, 'वह लड़की जो ऊपर की तरफ गई है ?'

- 'हां, हां! वही लड़की।'

'साईकैट्रिस्ट' डा. अनीत के पास गई है।' उसने बताया।

मुझे सुनकर एक धक्का सा लगा। मेरे सब सवालों के जवाब मुझे मिल चुके थे। मन में उदासी छा गई और बेहद शर्मिंदगी भी, 'आखिर क्यों मैं उसे 'इगनोर' करना चाह रही थी ?'

'आखिर क्यों..... ?' यही प्रश्न मेरे दिमाग में था और इससे मुझे अपनी सिर दर्द भूल चुकी थी। इसी बीच 'रिसेप्शनिस्ट' का कुछ ऊंचा स्वर सुनाई दिया, 'क्या सोच रही हैं, मैम ? डा. मनोज़ अपने कमरे में हैं।'

मैं चौंक उठी। तभी वह धीमे से कह रही थी, 'एक्सक्यूज़ मीं मैम! डाक्टर आ चुके हैं।'

मैं हड़बड़ा सी गई, 'आप मुझसे कह रही हैं ?'

– 'जी।'

विवेक मेरी तरफ देख रहे थे। मैं अपने आप को कोसती हुई डाक्टर मनोज के कमरे की तरफ चल पड़ी लेकिन प्रश्न लगातार अपनी जगह टिका हुआ था, 'आखिर क्यों मैंने ऐसा किया ?' शायद इनसान की फ़ितरत ही ऐसी है।

नसीमा

– क्या ढूंढ रही हो दीदी?

हमने अचानक आवाज़ सुनकर देखा तो एक गुज्जर लड़की खड़ी थी। उसने फिर पूछा, 'क्या ढूंढ रही हो दीदी?'

– 'कुछ खास नहीं। बस, यों ही।' मेरे साथ मेरी दोस्त सारिका ने जवाब दिया।

– 'कैसी बात करती हो दीदी ? मैं कब से देख रही हूं........ तुम दोनों कुछ ढूंढ रही हो।' वह ज़रा मुस्कुराती हुई बोली।

– अरे, हां! हमें कुछ पौधे चाहियें।

– 'पौधे ? कैसे पौधे ?' उसने पूछा।

कुछ पल हम सोचती रहीं कि इस सीधी सादी को क्या बताएं।

मेरी दोस्त मुझे साथ लेकर कुछ ऐसे पौधे इकट्ठे करने आई हुई थी जिनका संबंध उसकी रिसर्च के साथ था। उन्हीं की खोज करते करते हमारी मुलाकात उस गुज्जर लड़की से हो गई जो लगातार प्रश्न के बाद प्रश्न किए जा रही थी।

'क्या नाम है तुम्हारा ?' मैंने पूछा।

'नसीमा', उसने नाम बताया और बोली, 'तो क्या वे पौधे मिले ?'

'हां! मिले तो हैं लेकिन ....'

उसने मेरी बात काटते हुए कहा, 'लेकिन क्या ?'

मेरी दोस्त सारिका ने मेरी बात पूरी की, 'लेकिन वे उस गंदे पानी में हैं।'

'अरी दीदी ! मैं जाती हूं उस पानी में।' वह फुरती से बोली।

'तुम गंदे पानी में जाओगी ?' मैं आश्चर्य से कह ही रही थी कि वह बोली, 'हां मैं ! मुझे तो आदत है।'

हमें हिचकिचाहट महसूस हुई, 'नहीं, नहीं! तुम रहने दो।'

उसके चेहरे से साफ दिखाई दे रहा था कि हमारी बात नहीं मानेगी। फिर भी हमने चालाकी से उसे रोकने की कोशिश की, 'तुम तो कपड़े धो रही हो। इस तरह अपना काम छोड़ कर नहीं जाना चाहिए।' लेकिन वह तपाक से बोली, 'काम तो होता ही रहेगा। तुम मुझे अपना थैला दो।'

मैंने उसे थैला दे दिया और वह चली गई। जिस पानी में जाने की हमारी हिम्मत ही न हो रही थी उसमें वह एक दम पौधों के पास पहुंच गई। और धीरे-धीरे पौधे निकालने लगी। हम यह सब देख कर अजीब-सा अनुभव कर रहे थे। बेशक अपना काम होता देख कर खुशी भी हो रही थी।

इसी दौरान हम उसकी बातें करने लगे थे कि वह आ गई, 'लो दीदी! सम्भालो अपने पौधे।' बोली और खड़ी देखने लगी।

मेरी दोस्त सारिका उसे कुछ रुपए देने चाहे मगर वह झट बोल पड़ी, 'न, न। यह मैं न लूंगी। मैंने तुम्हारा काम पैसों के लिए तो नहीं किया है।'

'अरी यह तो मेरा तुम्हारे लिए प्यार है। काम के बदले तो नहीं दे रही मैं। ले -- लो।' सारिका ने कहा।

मैं सोचने लगी थी कि यह नसीमा अपने इस जीवन में कितनी संतुष्ट है। इसी में इतनी खुश है कि उसे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

'तुम पढ़ती हो ?' मैंने पूछा।

- 'हां, दीदी! मैं आठवीं में पढ़ती हूं।'

- 'तो आज स्कूल नहीं गई, तुम ?'

- 'मैं तो कश्मीर में पढ़ती हूं, दीदी।' नसीमा के पास जैसे हर सवाल का जवाब तैय्यार रहता हो।

- 'तो यहां कैसे ?' मैंने पूछा तो बोली, 'यहां मुझे मेरा चाचा लेकर आया है। एक हफ़्ता हो गया आए हुए। कल ही मेरी मैडम का फोन आया था कि मैं पास हो गई हूं। बस! अब तो जाऊंगी ही।' वह लगातार कहे जा रही थी, 'लेकिन वो मेरा चाचा है न..... वो कहता है तूं यहीं रह। यहीं काम कर...... पर मैं तो पढ़ूंगी।'

'तुम यहां कहां रहती हो ?' मेरी दोस्त ने उससे पूछा। उसे कुछ शर्म-सी आई। क्योंकि सामने ही कुछ गुज्जर लोग अपने मवेशियों समेत एक खुले में रह रहे थे। वह अपनी असलियत छिपाते हुए बोली, 'मेरा चाचा तो वहां सामने रहता है लेकिन मैंने

अलग कमरा ले रखा है। दिन को यहां चाचा के पास आ जाती हूं। अब आई थी तो चाचा ने कहा, 'जा मेरे कपड़े धो कर ले आ।' सो मैं यहां आ गई।

जाने ऐसा क्या था जो अब इतना बोलने के लिए मजबूर-सी लग रही थी वह।. उसने जो कपड़े पहने हुए थे वे कुछ फटे पुराने थे। उसने हमारी नज़र को पहचान कर असलियत को छिपाते हुए कहा, 'अरी दीदी! यह जो कपड़े मैंने पहने हुए हैं, ये मेरे थोड़े हैं। मेरी चाची के हैं। मैं तो पैंट-कमीज़ पहनती हूं। आज चाची ने ज़ोर दे कर कहा कि सूट सलवार पहनो तो मैं क्या करती ?' कह कर वह हमारे चेहरे पढ़ने का यत्न कर रही थी लेकिन हमने कोई टिप्पणी करना मुनासिब नहीं समझा। 'अच्छा अब तुम कश्मीर कब जाओगी ?' मेरी दोस्त ने पूछा।

'कल ही मेरी गाड़ी आएगी तो मैं चली जाऊंगी। मुझे तो पढ़ना है। चाचा के पास रह कर मुझे क्या मिलेगा ?' कहते हुए उसके चेहरे पर एक चमक के साथ हल्की सी मुस्कुराहट उभर आई थी।

नसीमा के साथ हमने कुछ और वक्त गुज़ारा। काफी बातें की। वह बिलकुल ऐसी लगने लगी थी जैसे कोई जानी पहचानी दोस्त हो। देर होने लगी थी। आखिर हमने विदा ली, 'अच्छा नसीमा, अब हम चलते हैं।' हम लौट आए। वह दूर तक हमें देखती और मुस्कुराती रही। रास्ते में बहुत देर तक मेरे और मेरी दोस्त के बीच कुछ खास बात नहीं हुई। □

प्रोजेक्ट माडल हाई स्कूल, स्टेट बैंक लेन, जानीपुर, जम्मू (तवी) - 180 007

कुद्ध की एक शाम

शकुन्तला सेठ

जीवन के लगभग आठ दशकों की लम्बी डगर चल कर जिस स्थान पर आज मैं खड़ी हूँ वहां से मुड़कर देखने पर समय की धूलि के नीचे दबे, अपने पैरों के निशान ढूँढना बड़ा कठिन लगता है पर मन की गहराई से उठे स्मृतियों की वायु के झोंके धूल की परतों को पलट, बरसों पूर्व भित्ति पर उकीरे गऐ रेखा चित्रों जैसे इन निशानों को कहीं अस्पष्ट और कहीं स्पष्ट मेरी आंखों के सामने उभार रहे हैं।

बात 1944-45 की है। मैं टैक्सट-बुक कमेटी की मीटिंग में भाग लेने श्रीनगर (कश्मीर) जा रही थी। कुद्ध, (जम्मू-श्रीनगर-राज मार्ग पर पड़ने वाला एक छोटा सा कसबा) के पास मेरी बस रुकी। ड्राइवर कुछ बोल कर गाड़ी से नीचे उतर गया। उसके पीछे-पीछे बस की सब स्वारियाँ भी एक-एक, दो-दो कर उतर गईं। मैंने सोचा, सम्भवतः सब लोग चाय आदि पीने के लिए उतरे हैं। थोड़ी देर में जब सब

यात्री अपना छोटा-छोटा सामान गाड़ी से ले-लेकर जाने लगे तो स्थिति को समझने के लिए मैं भी गाड़ी से नीचे उतरी। देखा : सड़क पर लगी बसों की लम्बी कतारें और आश्रय की तलाश में इधर-उधर घूमते लोग।

'अरे यह क्या! यहां इतनी बसें क्यों खड़ी हैं!' मैंने पास खड़े एक व्यक्ति से पूछा।

'आगे रास्ता खराब है। वर्षा से सड़क टूट गई है। आज रात यहीं रुकना पड़ेगा। सुबह तक शायद ठीक हो जाए।' यह सुनते ही मुझे अपने पैरों के नीचे की धरती खिसकती सी लगी और लगा कि मेरे हाथों और पाँओं की शक्ति शरीर के भीतर कहीं सिकुड़ती जा रही है। तभी मैंने थोड़ी दूर खड़े बस के ड्राइवर के पास जाकर कहा, 'भैय्या, कहीं डाक बंगले में एक कमरा दिला दो।'

–'डाक-बंगला। वह तो पूरे का पूरा भरा हुआ है। इस वक्त तो दुकानें और दुकानों के ऊपर वाले कमरे भी भर गए हैं। आप देख नहीं रहीं? दुकानों के आगे की खुली जगहों पर भी यात्रियों ने बिस्तर लगा लिए हैं। अब आप खुद ही घूम-फिर कर देखो, किसी परिवार वाले यात्री के पास शायद आप को अपने लिए थोड़ा सा स्थान मिल जाए।'

मैं हाथ से थाम कर बस का सहारा लिए खड़ी की खड़ी रह गई। मन में कई प्रकार के विचार आने लगे। आंखों के आंसू गले से नीचे उतारते हुए साहस बटोरने का प्रयास करने लगी। आने वाला रात का अंधेरा, उस अनजान स्थान पर अज्ञात लोगों के बीच, भय की दीवारें खड़ी कर रहा था और उससे उभरने का कोई भी उपाय मुझे सूझ नहीं रहा था। भय और शंकाएं हृदय को गहरे से झक-झोर रहीं थी। सैकड़ों लोगों के बीच मैं अकेली थी।

अंधेरा धीरे-धीरे गहराने लगा था। मैं निरुद्देश्य इधर-उधर देख रही थी कि सहसा एक परिचित चेहरा मेरी दृष्टि से टकराया। मैं उस व्यक्ति को पहचान रही थी, और वह भी सम्भवतः मुझे जानते थे पर उन से बात-चीत तो दूर कभी नमस्ते तक नहीं हुई थी। किन्तु उस समय मुझे ऐसे लगा जैसे वह कोई मेरे निजी सम्बन्धी हों। मेरा मन उत्साह से भर गया। अंधेरे में उजाले की किरण फूट पड़ी। मैं उन के निकट जाने को ही थी कि वह स्वयं मेरे पास आकर खड़े हो गए। जैसे उन्होंने मेरी स्थिति को भांप लिया था।

- आप यहाँ........?
- जी, मैं श्रीनगर जा रही हूं। कहा गया था कि गाड़ी बनिहाल में रुकेगी। वहाँ अपने परिचित हैं उन्हीं के पास ठहरना था। पर अचानक यहां रुकना पड़ गया है।
- आप को रहने के लिए कोई स्थान मिला?

– अभी तो नहीं।

– मिलेगा भी नहीं। यहाँ जितने यात्री जमा हो गए है उन के सबके ठहरने के लिए, समुचित स्थान मिलना, इस छोटे से कसबे में अति कठिन है। कुछ यात्री तो उधमपुर लौट गए हैं।

– 'आप, कहां ठहरे हैं?' मैं उन के पास ठहर सकती हूँ या नहीं इस का विचार किए बिना ही पूछ लिया।

– मैं ....। मैं तो बहुत दिनों से यहां अपनी साली के पास ठहरा हूँ। आप को वहीं ले जाता पर वह स्थान आप के लिए सुविधा-जनक नहीं रहेगा। हाँ, आप चाहें तो मैं आप को डॉक्टर प्रताप सिंह जी के यहां ठहरा सकता हूँ। आज-कल उन की पत्नी भी यहीं हैं। बड़ी भली महिला हैं। मुझे अपने बेटे जैसा मानती हैं।

उस उदार व्यक्ति के ये शब्द मेरे कानों में किसी मन्दिर से आती अति पावन घण्टियों-से गूंज गए। हृदय परमात्मा की अहैतुकी की कृपा से अभिभूत हो उठा। लगा मेरे सामने खड़ा व्यक्ति कोई मनुष्य नहीं, ईश्वरीय कृपा का मूर्तिमान् रूप है। उस उदार व्यक्ति के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए 'धन्यवाद' जैसा कोई भी शब्द मुझे नगन्य प्रतीत हुआ।

– आप की बड़ी कृपा! मैं तो घबरा रही थी! न जाने क्या होगा? रात कैसे कटेगी, कुछ भी सूझ नहीं रहा था! आप ने तो डूबते को नौका का सहारा दे दिया है।

वह सज्जन व्यक्ति गाड़ी के कण्डक्टर की ओर मुड़े। मेरा सामान उतरवा-कर एक से बोले, 'इसे डॉक्टर साहब के घर ले चलो और स्वयं मेरे साथ धीरे-धीरे चलने लगे।

मेरे साथ चलने वाले उस उदार व्यक्ति का परिचय पाने के लिए आप अवश्य उत्सुक होंगे। वह व्यक्ति थे जम्मू के जाने माने शिक्षाविद, गणितज्ञ, इतिहासवेत्ता श्री तेज राम जी खजूरिया जो अभी कुछ वर्ष पूर्व जम्मू के श्री रणवीर हायर सैकेन्डरी स्कूल से प्रिंसिपल के पद से रिटायर हुए हैं। उन दिनों शायद आप किसी गवर्नमैंट स्कूल में अध्यापक थे। उस समय और किसी अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से मुझे उस भयावह स्थिति से उबारने के लिए ही वहां उपस्थित थे। आज भी उस स्थिति की भयानकता का स्मरण कर मेरा शरीर कंटकित हो जाता है और उस भय की घड़ी में मेरे लिए सबल सहारा बन कर उभरे उस उदार व्यक्ति के प्रति हृदय कृतज्ञता से भर जाता है।

डाक्टर साहब का बंगला नज़दीक ही था। हम धीरे-धीरे चलते हुए दस-पन्द्रह मिनट में वहां पहुंच गए। डॉक्टर साहब की पत्नी से मेरा परिचय करवा कर खजूरिया साहब जल्दी से वापिस जाने लगे तो उन्होंने आग्रह किया, 'बेटा चाय तो पीकर जाओ।'

– 'नहीं, इस वक्त नहीं। अंधेरा बहुत हो गया है, घर में मेरी प्रतीक्षा हो रही होगी', यह कहते हुए वह कमरे से बाहिर चले गए पर दूसरे ही क्षण लौट कर बोले, 'सुबह छः बजे तैयार रहिएगा। मैं लेने आऊंगा।'

डॉक्टर साहब की पत्नी से अपेक्षा से कहीं अधिक स्नेह और सम्मान मिला। जाते ही चाय और रात को गरम-गरम सुस्वादु भोजन आग्रह पूर्वक करवाया गया। रात काफी समय तक आप मेरे साथ बातें करती रहीं। बातों-बातों में पता चला कि आप मेरी मौसी की सहेली हैं और मेरें परिवार के लोगों के साथ आप के मित्रता के अच्छे सम्बन्ध हैं।

सुबह छः बजने से पूर्व ही खजूरिया साहब आ गए। उन्हों ने स्वयं ही मेरा सामान उठा लिया। मैं संकोच और कृतज्ञता से गली जा रही थी। मैंने डॉक्टर साहब की पत्नी को नमस्कार कर उन से विदा ली और खजूरिया साहब के पीछे लगभग भागते हुए पगडण्डी से नीचे उतरने लगी।

नीचे आकर देखा बहुत सी बसें श्रीनगर के लिए जा चुकी थीं। मेरी बस के भी सब यात्री अपनी सीटों पर बैठ चुके थे। मेरे बैठते ही ड्राइवर ने बस चला दी और मैंने, खजूरिया साहब को देखते हुए नमस्कार में दोनों हाथ जोड़ दिए। □

125-कूचा भोलानाथ, धौंथली बाज़ार, जम्मू (तवी)-180 001

मनुष्य के रूप में गुलाब

शकुन्त 'दीपमाला'

आजकल नेताओं की छवि छल-कपट और कई प्रकार के घोटालों के कारण धूमिल सी हो गयी है, परन्तु आज से कुछ वर्ष पूर्व का समय ऐसा न था। तब नेता लोग जनता को लूटने वाले नहीं अपितु देश के नाम पर सर्वस्व लुटाने वाले थे। भले ही आजकल की दूषित राजनीति के कुचक्र में पले बढ़े लोग उन नेताओं की अर्जित ख्याति को मलियामेट करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। उन का सम्मान राजनैतिक कुर्सियों के कारण नहीं था। वह तो अपनी विशिष्टताओं के कारण लोगों के दिल दिमाग पर छाये रहते थे।

ऐसा ही एक नाम सर्वप्रिय पं० जवाहर लाल नहरू का भी है। छोटे बड़े सभी लोग उन्हें बहुत प्यार करते थे, चाहे वह उन्हें कभी मिले थे या नहीं। जब हम लोग छोटे थे तो स्कूल के दूसरे बच्चों की तरह हमें भी चाचा नहरू बड़े अच्छे लगते थे। उन के विषय में अनाप-शनाप कहने सुनने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था।

मुझे याद है एक बार मेरे भाई ने मुझे कहा, "पं० नहरू तो अब बूढ़े हो चुके हैं। जब यह मर जायेंगे तब इन की जगह कौन आयेगा?"

ऐसे सीधे-सपाट अशिष्ट शब्द सुन कर मुझे क्रोध आ गया। मैंने कहा, "तुम ने पं० नहरू को गाली दी है?"

वह तपाक से बोला, "तो क्या हुआ? मरना तो सब को होता है।"

मैंने भी धमकी भरे स्वर में कह दिया–"आज पिता जी को अवश्य बोलूंगी।" मैं चाहती थी कि उसे ऐसे अपशब्द बोलने के लिये दण्डित किया जाय परन्तु मन ही मन डर भी रही थी कि कहीं पिता जी भी उस का समर्थन न कर डालें।

दोपहर के समय मैंने खाने के टेबल पर ही पिता जी से शिकायत कर डाली कि आज भाई ने पं० नहरू को मरने वाली बात बोली है। मेरी बात सुन कर पिता जी ज़रा भी नहीं हंसे बल्कि और गम्भीर हो गये क्योंकि वह जानते थे कि मामला हार और जीत व यथार्थ और सम्मान का था। हम दोनों मुकद्दमे का निर्णय सुनने को उत्सुक थे। कुछ देर के पश्चात् पिता जी ने मेरे भाई की ओर मुड़ कर पूछा– 'बेटा, तुम क्या यही बात पं० नहरू के मुंह पर बोल सकते हो?'

उसने लज्जित-सा होकर कहा, 'नहीं, बाबू जी!'

पिता जी ने उस को सही पकड़ा था। वह बोले–"तो वह बात जो तुम उन के मुंह पर नहीं बोल सकते वह तुम ने पीछे से क्यों बोली? वह लोग बिल्कुल अच्छे नहीं होते जो मुंह पर कुछ बोलें और पीठ पीछे कुछ और।"

कहने का अर्थ है कि केवल मैं ही नहीं भारत के लाखों करोड़ों लोग उन्हें इसी तरह चाहते थे। वह जनजन के नेता थे। कहीं पता चले कि नहरू जी आ रहे हैं तो सारा जनसमूह उन को देखने और सुनने को निकल पड़ता था।

शायद यह 1960 की बात है जब वह एक बार जम्मू आये थे। उन दिनों फिल्म डायरैक्टर रामानन्द सागर के माता-पिता अपने परिवार समेत श्रीनगर से जब भी जम्मू छुट्टियां बिताने आते तो परेड स्थित पैस्टन जी की कोठी में रहते थे जो इन्शयोरेन्स कम्पनी में फोटोग्राफ़र थे। तब वह लोग भी जम्मू में ही थे। हम दोनों परिवारों में काफ़ी घनिष्ठता थी और बहुत आना-जाना रहता था। उन्हीं के बुलावे पर हम सारे भाई-बहन उन के घर पहुंच गये।

ठीक भी था। रणबीर हायर सैकेंडरी स्कूल के सामने जहां मिनी स्टेडियम है वहां मन्च बना हुआ था और सड़क के उस पार कुछ हट कर पैस्टन जी की कोठी थी। वहां हमारे दो तीन परिवारों के अतिरिक्त और कोई नहीं था जब कि

आसपास के सारे घर, दुकानें, दीवारें, छत्त तथा मुंडेर सब लोगों से ठसाठस भरी पड़ी थीं। कहीं तिल धरने की जगह नहीं बची थी।

अब भाषण शुरू हो चुका था। कहीं कोई शोर शराबा नहीं था। सब लोग बड़ी एकाग्रता से सुन रहे थे परन्तु मुझे भारी निराशा थी। बीच में इतना फ़ासला था कि वहां से पं० नहरू एक छोटी सी तस्वीर के बराबर दिख रहे थे। यहां से देखना तो बेकार था। मैं तो उन्हें बिल्कुल पास से देखना चाहती थी। मैंने अपनी छोटी बहिन से सलाह की और हम दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ कर बाहिर निकल आये और लगे सुराग लेने के कहां से उन के सही दर्शन हो सकते हैं। मैंने देखा कि रणवीर हायर सैकेंडरी स्कूल की पिछली तरफ़ की सारी पैलेस रोड खाली पड़ी है। मैं समझ गयी कि यहां पर इतना सुरक्षा प्रबन्ध है कि किसी को खड़े भी नहीं होने दे रहे। स्कूल के गेट के पास खड़े एक पुलिस आफ़ीसर के पास जा कर मैंने निवेदन किया, 'कृपया आप मुझे बतायें कि चाचा नहरू कहां से गुज़रेंगे। हम उन्हें पास से देखना चाहते हैं।' वह अच्छा मनुष्य था। बोला-'आप यहीं खड़ी हो जाओ। वो अभी इसी गेट से बाहिर आने वाले हैं। और देखो किसी और को मत बोलना।'

हम दोनों वहां बड़ी अधीरता से खड़ी हो गयीं। अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसी समय वो हमें बाहिर आते दिखे, मुस्कुराते हुए। पास ही जीप खड़ी थी। उन की सीधी नज़र हम दोनों पर पड़ी। हमारे अभिवादन का उत्तर उन्होंने बड़ी शरारत भरी मुस्कान से दिया जैसे छुआ छू खेलते हुए किसी बच्चे ने उन को दौड़ कर छू लिया हो। वह कुछ पल के लिए रुके और उन्होंने अपने हाथ में पकड़ी हुई फूलमाला मेरी ओर फैंकी जो मेरे हाथ को छू कर नीचे गिर पड़ी परन्तु मैं अपलक उन को निहारती रही, 'गुलाब सा खिला, गुलाबी चेहरा।' खुली जीप में दूर तक मुझे उनकी चुस्त पीठ और तनी हुई गर्दन दिखती रही। मुझे लगा आज मैंने सचमुच किसी दिव्य-पुरुष के दर्शन किये हैं या गुलाब को ही मनुष्य के रूप में देखा है।

फिर मई 1964 की बात है जब मैं पुंछ में अपने ताया जी के घर गयी हुई थी। वहीं 27 मई की मनहूस सुबह को पं० नेहरू की अनायास मृत्यु का समाचार कुछ इतना अनहोना और अटपटा सा लगा जैसे कोई कह दे कि हिमालय समुन्द्र में डूब गया। दिन-दिहाड़े सूर्य विलुप्त हो गया या गंगा अनायास सूख कर बालू बन गयी।

अपने आप सारा शहर बन्द हो गया। अजीब सा सन्नाटा चारों दिशाओं को डंस रहा था। उसी दिन मुझे पिता जी का तार मिला जिस में उन्होंने मुझे विशेषकर पं० नहरू की अन्तिम यात्रा का कोई भी प्रोग्राम रेडियो से सुनने को मना कर दिया था क्योंकि उन्हें चिन्ता थी कि कहीं दिन-रात रो-रो कर मैं अपनी सेहत ही न खराब कर डालूं। वह भलीभांति जानते थे कि वह दिन मेरे जीवन का सब से दु:खदायी दिन था।

आज इतने वर्ष पहले के उस महान राजनीतिज्ञ युग-पुरूष के विषय में सोचती हूं तो बड़ा विस्मयजनक-सा लगता है कि कोई इतना लोकप्रिय कैसे हो सकता है।



161/162-सरवाल, जम्मू (तवी) - 180 005

खोज

प्रिया श्री

यादें बस यादें रह जाती हैं

यादों के सहारे ज़िन्दगी बीत जाती है।

अपनी शादी के ठीक तीन दिन के बाद मैं अमरीका चली गई। वहां मैं हर पल अपने परिवार और देश को याद करती थी। माँ पापा के बारे में सोच-सोच कर मेरी आंखें भर आती थीं। छोटी बहन गुड़िया के साथ झगड़े और छोटी-छोटी प्यार भरी लड़ाइयां, राजा भईया का मुझ पर कभी-कभी रौब डालना इत्यादि ये सारी बातें रह-रह कर मुझे याद आती थीं तो बहुत बड़ी कमी अनुभव होती थी। मेरी आँखें एक सूनापन लिए भीड़ में हर पल अपने देश के लोगों को खोजती रहती थीं।

हमारे घर के आस पास सारे लोग अमरीकावासी थे। मेरे पति ज्ञान जी के ऑफिस चले जाने के बाद मैं सारा-सारा दिन बाहर बालकौनी में खड़े होकर सड़क को ताकती रहती थी कि शायद कोई अपना दिख जाए। ऐसे ही एक माह बीत गया। मेरी मायूसी बढ़ती चली गई। मुझे यह एहसास हुआ कि किसी भी चीज़ की कदर हमें तब पता चलती है जब वह हमारे पास नहीं होती।

आज जब मैं अपने परिवार से दूर हो गई हूँ तब मुझे यह एहसास हुआ है कि ज़िन्दगी प्रियजनों के बिना अधूरी है। प्रकृति की सुंदरता हो या अच्छा भोजन, इनका मज़ा तभी आता है जब उसमें अपनों का प्यार शामिल हो।

करीब दो महीनों के बाद एक दिन फोन की घंटी बजी। मैंने फोन उठाया तो दूसरी तरफ से मेरे सुरेश मामा की आवाज़ सुनाई दी। अचानक बादलों में जैसे मोर नाच उठा हो। करीब एक घण्टे तक उनके साथ मैंने फोन पर बातें की। इस तरह कि खुशी से मेरी आँखें छलक उठीं।

पुरानी यादों के सहारे दिन गुज़रने लगे। ज्ञान जी दिन प्रतिदिन अपने काम में व्यस्त होते चले गए। मुझे उनके काम में अड़चन डालना भी ठीक नहीं लगा।

करीब छ: महीने के बाद अचानक मुझे पता चला कि जम्मू (जे एंड के) से मेरी मौसी अमरीका आ रही हैं। उनसे मिलने के लिए मैं तड़प उठी। पांच सितम्बर 2000 को मैं अपने मामा के पास 'सियाटल' गई। एयरपोर्ट पर अपने मामा और मौसी को देखकर मेरा दिल भर आया। मेरी आंखें शांत हो गईं। जिंदगी ने मुझे यह एहसास करा दिया कि दुनिया के किसी भी कोने में चले जाओ, अपने देश और अपने परिवार से बढ़कर कुछ नहीं है।

मैं बहुत खुश किस्मत हूँ कि आज मेरे सुरेश मामा और मेरा भाई राहुल भी अमरीका में हैं। उन दोनों के होने से मेरा दु:ख बहुत कम हो गया है। जब भी मुझे यहां की याद सताती है तो मैं उनसे बात कर लेती हूं। □

CALIFORNIA-94040 U.S.A.

देवदूत

सुश्री चांद 'दीपिका'

सर्दियों की सांझ घिर आई थी और मैं दिल्ली की मायावी महानगरी की एक सड़क पर मज़े-मज़े से चलती जा रही थी। सहसा मुझे लगा मैं घर की सड़क पर न जाकर किसी अपरिचित दिशा की ओर जा रही हूं। सुनसान सड़क थी। एक जैसे घर थे। मैंने दूर तलक दृष्टि दौड़ाकर देखा, कोई भी तो नहीं आ जा रहा था। दिल्ली तो अतल अथाह समुद्र है। एक बार खो गया तो फिर मिलने से रहा। यहां के दिल्ली वासी धोखा खा जाते हैं फिर अपरिचित अनजान की बिसात कहां...? बचपन में सुनी बातों की स्मृति से मेरे माथे पर पसीने की बून्दें छलछला आई थी। एक प्रौढ़ दम्पत्ति संभवत: सैर के लिए अथवा कहीं जा रहे थे। उनसे मैंने पूछ लिया, 'सुनिये! यह सड़क अमर कालोनी लाजपत नगर तो नहीं जाती?'

दोनों ने मेरी ओर देखा। फिर उत्तर दिये बिना ही चले गये। इक्का दुक्का स्त्री पुरुष बारी-बारी और भी गुज़रते रहे। मेरा आशा भरा प्रश्न, उत्तर न पा कर सहम जाता रहा।

आंख पर से चशमा हटा कर बार-बार सड़क के किनारे बनी बिल्डिंगस की ओर देखा। परिचय का कोई सूत्र हाथ न आ सका।

मारे भय के मेरे कदम पुन: पीछे लौट पड़े। निपट एकाकी निर्जन पथ पर चलना दूभर होने लगा। एन. सी. ई. आर. टी. में हिमाचल यूनिवर्सिटी की ओर से एम. एड के कोर्स चल रहे थे और इसी सिलसिले में मेरा दिल्ली आना हुआ था। बस से उतरते हड़बड़ी में मेरा एक पर्स सहयोगी लैक्चरर के पास रह गया। ऑटो में बैठकर पता चला तो बड़े पर्स में कुछ एक नोट ही शेष पड़े थे। आटो वाले को सच बताया तो वो सैंट्रल

मार्किट के समीप छोड़ कर चलता बना।

सामने चौराहा था। हताश, निराशा से आंसू छलक आये थे। पल पल बढ़ता अन्धकार मन प्राणों पर भी छाने लगा था। चिरकाल तक चश्मा हाथ में पकड़ आंखें फाड़ कर दूर-दूर तक घूरती रही। स्वयं को कोसती रही, 'सच क्यों बोला?'

दर्प, अहंकार, चतुराई न जाने कहां दुबक गये थे। प्राण अदृश्य शक्ति के समक्ष याचना हेतु नमन कर रहे थे। लगा पास से कोई जा रहा है। दो छोटे बच्चों को देख सांत्वना मिली।

'सुनो मैंने मूलचन्द हास्पिटल जाना है,' मैं गिड़गिड़ाई।

'आइये हमारे साथ,' उनकी आवाज़ आई।

वे मुझे अन्धेरी गली में लेकर जा घुसे थे। वो भाग रहे थे और उनके पीछे मैं भी भागती जा रही थी। एक गली, दूसरी गली फिर तीसरी गली से गुजरते ही मैं मूलचन्द हास्पिटल के ठीक सामने खड़ी थी।

न्यूनलाईट में हास्पिटल का बड़े-बड़े अक्षरों में चमकता बोर्ड मुझे मानो नवजीवन दे गया। कृतज्ञतावश मैं बच्चों की और मुड़ी। बच्चे नदारद थे। मुझे हास्पिटल के गेट पर विस्मृत खड़ा छोड़ कर न जाने कहां चल दिये थे।

हास्पिटल मैंने प्रातः ही देखा था। बड़ी दीदी को देखने मामा जी के साथ आई थी। स्मृति के एक कोने में पड़ा हास्पिटल का नाम अनायास ही मुझे जीवनदान दे गया।

मेरी उड़ी-उड़ी रंगत, ठण्डे हाथ और लड़खड़ाती वाणी मामी जी को अगले पल सब समझा गई थी।

फिर बड़े जीजा जी के साथ अमर कालोनी की और चलते समय यह सोचकर मेरे रौंगटे खड़े हो रहे थे कि यदि उस भयावनी सड़क पर दो बच्चे देवदूत बनकर न मिले होते तो....? 

323-रिहाड़ी कालोनी, जम्मू तवी-180 005

मैं पहली बार पुंछ में

राज भल्ला

जीवन-यात्रा में खट्टे, मीठे, कड़वे और कसैले सभी प्रकार के रसों का स्वादन करते हुए आज जीवन-सन्ध्या में 'वसुधैव कुटुम्वकम्' की पगडंडी पर मेरे पांओं की थिरकन स्वाभाविक है और सहल भी। वसुधाभर का प्यार पाने की ललक में अब किसी संघर्ष में जूझना कतई पसन्द नहीं। शान्त, एकान्त जीवन जीने की चाह है। कई स्मृतियां

विस्मृतियों के गर्त में तिरोहित हो चुकी हैं। तो भी कुछ एक संस्मरण जीवन के झरोखे से अभी भी झांकते हुए मुझे बलात् अतीत की ओर मुड़ने को विवश करते हैं।

एक संस्मरण जिसे भुलाए से नहीं भूल पा रही और सम्भवत: शेष जीवन-यात्रा में भी जिसकी तांक-झांक, जिसकी गुदगुदी मुझे आनन्दातिरेक से विभोर करती रहेगी उसे सुधी-पाठकों के समक्ष रखने का लोभ संवरण करना मेरे लिए कठिन है।

बात पचास के दशक के आसपास की है। पुंछ के प्रतिष्ठित बख्शी परिवार के दो बेटे श्री कृष्णलाल भल्ला (सम्प्रति जो मेरे पति हैं) और उनके भाई जगदीश मिश्र भल्ला लाहौर के डी. ए. वी. कालेज में पढ़ रहे थे। देश के अन्य भागों की तरह लाहौर में भी विभाजन के फलस्वरूप कई दुर्घटनाएं हुईं। पढ़ाई तो उन दिनों सब की खटाई में पड़ चुकी थी। कुछ समय दोनों भाइयों ने वहां सेवा-कार्य किया और फिर किसी अनिष्ट की आशंका से जैसे तैसे अपने घर पहुंचे। देश की उस अवस्था को देखते हुए गणित में एम. ए. कर रहे कृष्णलाल घर तो पहुंचे पर बड़ी विचित्र मानसिक विरक्ति लिए हुए थे।

माता पिता बेटे की इस मन:स्थिति से अत्यन्त दु:खी हुए। समझाया बुझाया गया, जप, तप का आयोजन किया गया, साधु सन्तों को घर पर निमन्त्रित किया गया पर जब कोई असर न हुआ तो उन्हें फंसाने के लिए विवाह में बांधा गया और मैं जम्मू से बहू बन कर पुंछ आ गई।

यह सादा-तरीन शादी तो युवा लोगों के लिए कल्पनातीत है। न बैंड बाजा, न घोड़ी, न बारात, न दहेज और न ही कोई अन्य आडम्बर। यह सब मेरी इच्छा से हुआ था। या फिर ऐसा समझिए कि अपने विचारों के अनुकूल वर-प्राप्ति की मेरी ये शर्तें थीं जिस पर प्रो० साहब को खरा उतरना था और वे उतरे भी।

इस तरह मैं प्रो० कृष्णलाल भल्ला के साथ विवाह-सूत्र में बंध गई पर मुझ नववधू को पारम्परिक वधू-वेश में न देखकर पुंछ के लोगों को बहुत हैरानी हुई।

इसी संदर्भ में एक घटना याद आ रही है। एक दिन वर्क-सेंटर की महिला-अधिकारी हमारे घर आयीं। मेरे ही कमरे में बैठीं-बैठीं जब वे ऊब गईं तो मुझ से कहने लगीं-'वो जो रात को बहू आई है, आप मुझे उससे तो मिलवाइए।'

मन ही मन मुस्कुराते हुए मैंने कहा-'जिस बहू को देखने आप आई हैं, वह मैं ही हूं।'

खादी के साधारण वस्त्रों में, बिना किसी सिंगार के कोई लड़की वधू कैसे हो सकती है? और उन्हें स्वयं बहू द्वारा बहू का परिचय देना आश्चर्य में डाल गया था। जीवन की इस अविस्मरणीय घटना के साथ वर्क-सेंटर में जाने वाले मेरे कदम पुंछ के सामाजिक जीवन में प्रवेश के लिए उद्दत हो उठे थे।

वस्तुत: पुंछ के जन-जीवन ने मुझे इतना प्रभावित किया है कि 1971 से स्थायी रूप से जम्मू में रहते हुए भी मैं आज तक उनके अहेतुक स्नेह में डूबी हुई हूं।

पचास के दशक में मैं जब पहली बार पुंछ गई तो देखा कि लोगों की सरलता और सहजता तो प्रशंसा योग्य है ही पर सामाजिक स्तर पर ये लोग पिछड़े हुए हैं। तब लड़कियों के लिए मिडल स्कूल और लड़कों के लिए हाई स्कूल हुआ करता था जो अब डिग्री कालेज के खुलने के साथ ही हायर सैकेंडरी में परिवर्तित हो गया है।

ऐसी ही स्थिति स्वास्थ्य सेवाओं की थी। न कोई लेडी-डाक्टर और न ही कोई ट्रेन्ड नर्स थी अस्पताल में। पुंछ में पहली लेडी डा० श्रीमती रम्बाल के आने से स्त्रियों ने बड़ी राहत महसूस की। इस के लिए मुझे और मेरी सहयोगी बहनों को कठोर संघर्ष करना पड़ा था।

पानी के लिए दरिया, कुंए और बावलियां तो थीं पर नल नाम की कोई सुविधा न होने पर पानी स्वयं ही ढोना पड़ता था। पुरानी पीढ़ी के लोगों के लिए यह काम भले ही मुश्किल न हो पर बाद की लड़कियों के लिए अवश्य मुश्किल था। स्कूल जाना, घर का काम करना और फिर रविवार या किसी और छुट्टी के दिन कपड़ों की गठरी सिर पर उठाए पनघट पर जाना पुंछ की सीधी-सादी महिलाओं के लिए दुष्कर-साध्य था।

मैं सोचती थी कि मैं कहां आ पहुंची? महात्मा जी से शादी करके, घरेलु झंझटों से जूझते हुए मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो रही थी। मेरे विवाह के लिए और भी तो कई उपयुक्त प्रस्ताव आए थे, फिर मैंने पुंछ को ही क्यों चुना?

प्रो० साहब को तब लोग महात्मा कृष्ण कह कर पुकारते थे। पर खैर यह कोई घाटे का सौदा न था। मैंने पुंछ के लिए जो किया उन में उन का सक्रिय योगदान रहा।

अपनी कठिनाइयों का अहसास होते ही लोगों ने मेरे काम में सहयोग देकर उसे सहल बना दिया। अब वे अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक थे और अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी।

सीमावर्ती प्रदेश की कई समस्याओं के सिलसिले में मुझे श्री गुलजारी लाल नन्दा, बख्शी गुलाम मुहम्मद साहब, डा० कर्ण सिंह, श्रीमती इंदिरा गांधी आदि से मिलने का मौका मिला।

याद है मुझे जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद साहब से अपनी वह भेंट। जब हमारा डैपुटेशन समस्याएं लेकर उनके पास पहुंचा तो पहले आए हुए लोग कहने लगे 'हम कब से आए हुए हैं, समय ही नहीं मिल रहा। लगता है बख्शी साहब कुछ नाराज़ है।'

अपने परिचित बन्धु से मैंने मज़ाकिया लहजे में कहा, ''आप कहते हैं, कुछ नाराज़ हैं तो चलो हम उन्हें पूरा नाराज़ कर आएं।''

बातचीत के दौरान जब पुंछ में पानी की असुविधा का जिक्र आया तो मैंने कहा, 'जनाब! क्या बात है कि कश्मीर में तो जगह जगह नल लगे हैं पर इधर ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है?'

उन्होंने मुझे बीच में ही टोकते हुए कहा–'क्या आपने कभी कश्मीर देखा भी है?'

हाज़िर जवाबी में मैंने कहा, 'जनाब! मेरी उम्र का जो भी अन्दाज़ा आप लगा रहे हो उसके आधे बरस तो मैंने कश्मीर में बिताए हैं।' इतने पर ही चीफ मिनिस्टर बख्शी साहब का तमतमाता चेहरा शांत हो गया। लोगों की खुसुरफुसर में सन्नाटा व्याप गया और फिर वहां आए बख्शी साहब नल लगाये जाने का आदेश देकर ही गए।

वस्तुत: सरकारी तन्त्र से काम लेने के लिए जनमानस का जागरूक होना नितान्त आवश्यक है। नहीं तो स्कूल, कालेज, नहरें, नल, अस्पताल, डिस्पेन्सरियां, सड़कें आदि सब कुछ कागज़ पर ही बनते हैं। जनता के आगे यह सब बरसों बाद खुलता है और वह भी चुनावी मौसम में! 

386-रिहाड़ी कालोनी, जम्मू (तवी) - 180 005

कल की तो बात है

अंजलि शर्मा

दिमाग का वह हिस्सा जिसे हम स्मृति कोश कह सकते हैं, उसमें महत्त्वपूर्ण घटनाओं को सुरक्षित रखने की क्षमता है। वह सारी बातें जो बचपन से लेकर वर्तमान तक घटी हुई होती हैं इसके अलग-अलग खानों में बंद रहती हैं। जिस किसी खाने के बाहर खटखटाइऐ उसी का दरवाज़ा खुल जाता है। यह तो हुआ वैज्ञानिक पक्ष, किंतु इसे भी शायर अपने शायराना अंदाज़ में इस तरह कहेंगे–

'यह यादें तो नाजुक रगें हैं। जिस किसी पर हाथ रख लें वही दुखने लगे, कभी आंसू बन कर आंखों से बहने लगें तो कभी मुस्कराहट बन कर होंठों पर फैल जाएं। कभी आवाज़ बन कर कानों में गूंजने लगें तो कभी रोम-रोम से स्पर्श करने लगें। इतनी नज़दीक दिखें कि पूरा अस्तित्व महसूस करने लगें लेकिन इतनी दूर कि छूना चाहें तो छू न सकें। फासला सिर्फ शीशे की पर्त सा जिसमें दिखाई तो साफ देता है परन्तु छूना चाहें तो छू न सकें।'

मेरे संस्मरण इतने पुराने भी नहीं। सिर्फ बचपन जितने पुराने हैं। बस! कल की तो बात लगती है। जब भी कुछ याद करने लगो तो बचपन की ही यादें क्यों आती हैं? वह

इसलिये कि शायद वही यादें सुखद होती हैं जो मन को खुशी देती हैं, ठंडक पहुंचाती हैं। पर क्या युवा अवस्था की यादें अच्छी नहीं होती? होती तो हैं किन्तु बचपन सी सच्चाई नहीं होती और बचपन के आगे बेमाने हो जाती हैं।

जब भी कुछ याद करने लगो तो एक सिलसिला सा बंध जाता है। यादों का तांता सा लग जाता है कभी पहाड़ों की, कभी नदियों-नालों की, चीड़-दयारों की, जंगली फूलों की। वह फूल जिन्हें किताबों में सुखाने की चाह कभी खत्म नहीं होती थी और कहती थी कि इतनी मोटी किताब बनाऊंगी जिसमें पूरे पहाड़ के फूलों को समेट लूंगी, सगे संबंधियों, दोस्तों की, उन अजनबियों की जो सिर्फ एक बार मिले और ज़ेहन पर नक्श छोड़ गए। चील पक्षियों की, एक से एक खूबसूरत यादों का तांता सजा दूंगी। इन्हीं के साथ-साथ कुछ ऐसी यादें जो आज तक मुझे अक्सर सताती हैं।

जब-जब मैं समाचार पत्रों में पढ़ती हूं कि कश्मीर में आतंकवादियों ने यह किया, वह किया, किसी का अपहरण कर लिया, किसी का घर जला डाला, किसी को मार डाला तो मेरा मन विचलित हो उठता है। वह मुसलमान, कश्मीरी मुसलमान जो इतना प्यारा है, सच्चा मुसलमान है वह ऐसा कैसे कर सकता है?

मुझे अब दीख रहे हैं ऊंचे-ऊंचे पहाड़, सरू चीड़ और चिनार के पेड़, ऊपर ऊंचे नीचे आते जाते बादल और लाल चौक, लाल चौक से हटकर जेहलम दरिया श्रीनगर के बीचों-बीच बहता हुआ। दोनों किनारों पर बसे हुए छोटे-छोटे मोहल्ले, पुल और कश्तियां मोहल्लों को आपस में जोड़ती हुईं।

मैं ज्यादातर कश्ती से ही आर पार जाया करती थी। एक अधेड़ उम्र का मल्लाह जो अक्सर मुझे दूर से ही देख कर उस पार ले जाने की तैयारी में लग जाता था, अगर वह दूसरे किनारे पर होता तो भी आवाज़ देता, 'वहीं रुको, मैं आ रहा हूं।' वरना दूसरे शिकारे वाले भी होते थे जो उसकी सवारी समझ कर मुझे पार करवाना अपनी जिम्मेदारी समझते थे।

उस किनारे पर कुछ दूर बड़े से चिनार थे। वहां थड़े पर बैठ कर इंतजार करना भी अच्छा लगता था। ख़ासकर तब जब बंड पर कोई लड़ाई झगड़ा चल रहा होता था। वहां रहने वाले अक्सर आपस में ख़ूब लड़ते झगड़ते थे और झगड़ते समय ऊंचा-ऊंचा चिल्लाते थे। और जब लड़ते-लड़ते थक जाते थे तो लड़ाई ख़त्म नहीं करते थे बल्कि एक टोकरी को उल्टा कर के रख देते थे। फिर दोबारा लड़ना हो तो टोकरी सीधी कर लेते थे। बिना हाथापाई की ऐसी मौखिक लड़ाई को वहां 'हंऽज़ लड़ाई' कहा जाता है। इसमें मुख्य भूमिका दोनों पक्षों की औरतों की होती है।

हां तो मैं बता रही थी कि मल्लाह मुझे दूर से ही देख लेता था और आवाज़ें दे देकर बुलाता था।

एक दिन शाम को मुझे लौटने में काफी देर हो गई। उस समय हल्की- हल्की बून्दा बांदी भी हो रही थी। मैं सोचती हुई आ रही थी कि पता नहीं बंड पर कोई होगा भी कि नहीं। अचानक मल्लाह मुझे दूर से ही पुकारने लगा, 'आओ बेटी, इधर आओ।'

उसे देख कर मुझे राहत मिली। इसी शिकारे में मेरे साथ दो-तीन सवारियां और भी चढ़ीं और शिकारा मेरे घर वाली तरफ बढ़ने लगा। लहरों को चीरता हुआ, हाऊसबोटों के बीचों-बीच बतखों के साथ-साथ किनारे पर लगने के लिए शिकारा बढ़ रहा था। दिल धक-धक भी कर रहा था क्योंकि अन्धेरा बढ़ता जा रहा था और आगे भी मुझे अकेले ही जाना था। इतने में शिकारा किनारे पर लग गया और सभी उतरने लगे। मेरे उतरने की बारी आई तो मल्लाह ने शिकारा वापस मोड़ लिया और चलाना शुरू कर दिया। मैं तो पहले ही डरी हुई थी और दिल और ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। मैंने उसे जोर से पूछा, 'शिकारा क्यों मोड़ लिया बाबा?' किंतु उसने मुझे कोई जवाब नहीं दिया और शिकारा चलाता रहा।

देखते ही देखते शिकारा मंझधार में पहुंच गया। मेरे मन में न जाने कैसे-कैसे विचार उठने लगे, कैसे-कैसे ख्यालात आ-आ कर डराने लगे। सोचने लगी, 'मुझे कहीं जेहलम में ही न कूदना पड़े? मुझे तो तैरना भी नहीं आता। आज तो डूब ही जाऊंगी। यह सारी हलचल मेरे अन्दर अभी चल ही रही थी कि देखा उसने शिकारा घुमा लिया है और वापस उसी तरफ जा रहा है जिस किनारे मुझे उतरना है। अब मेरी हलचल मचाती घबराहट की जगह उस सोच ने ली कि यह क्या रहस्य है? इतने में शिकारा उसने उसी किनारे पर ला खड़ा कर दिया और बोला, 'उतर जाओ, बेटी!'

मैं उससे क्या पूछती? वह ख़ुद ही बोल उठा, 'जानती हो उनमें से एक आदमी जो तुम्हें बुरी नज़र से घूर रहा था उसे मैंने पहचान लिया था। लेकिन अब न डरो। वह चला गया होगा। कोई ऐसी बात होगी तो लौट आना। घर तक छोड़ आऊंगा।'

मैं, 'शुक्रिया बाबा,' कहकर शिकारे से उतर गई और अपने रास्ते चलने लगी किन्तु मेरी गर्दन एहसान और शरम से झुकी हुई थी। ख़ुद को कोसे चली जा रही थी कि बाबा को मेरा कितना ख्याल था और मैं क्या समझ रही थी। जो सम्मान मैं अब तक उसकी उम्र को देती रही, अब उसकी जगह एक व्यक्तित्व ने ले ली थी।

इस बार जो मैं श्रीनगर गई तो वहां बंड पर भी गई। मेरी नज़रें उसी शक्ल को ढूंढ रही थीं। बहुत सारे शिकारे खड़े थे। सब कह रह थे 'इसमें बैठो। मेरे शिकारे में बैठो।' पर मैं उसी मल्लाह के बारे में जानना चाह रही थी। पूछना चाह रही थी किंतु पूछती भी

कैसे? उसका नाम भी तो नहीं जानती थी। कभी पूछा ही नहीं था। मैं उसे बाबा ही कहती थी और वह मुझे बेटी। आख़िर उसे बिना देखे, बिना उसके बारे में जाने ही लौट आई सिर्फ इस संस्मरण को शब्दों में ढालने के लिए।

मैंने कहा न, एक बार कुछ याद करने बैठो तो यादों का तांता ही लग जाता है। हम लोग कालेज की तरफ से हाईकिंग पर थे। महीना सितम्बर अक्तूबर का था और मार्ग था अमरनाथ जी की तरफ था। हमें हर रोज़ एक लंबा सफर तय करना होता था और शाम होते-होते निश्चित पढ़ाव पर जहां हमारे टैंट लग जाया करते थे पहुंचना होता था। रात भर आराम के बाद हम सुबह उठ कर नए पहाड़ी रास्ते तय करने चल दिया करते थे।

यह बात 'हाइकिंग' के चौथे दिन की है। दोपहर के समय मैं और मेरी सहेली एक सुनसान रास्ते पर चली जा रहीं थी। सारी वादी फूलों से ढकी हुई थी लेकिन चलते जाना हमारा नियम था। और मैं उसे कदम कदम पर टोक रही थी कि यहां पैर मत रखो। देखो यहां फूल हैं। वहां पैर मत रखो। वहां फूल हैं और वह खीझ रही थी, 'कहां रखूं ? यहां तो सब जगह फूल ही फूल हैं।'

वह मुझ से तंग ज़रूर पड़ रही थी लेकिन मैं सोच रही थी कि कोई फूल हमारे पैरों तले आकर मसला न जाए और इसी से नोक-झोंक हो रही थी हम दोनों में। इतने में कुछ दूरी से एक घोड़े के पैरों की चाप सुनाई देने लगी। तभी हम रुक गईं, यह देखने के लिए कि कौन आ रहा है? हमें फिक्र भी होने लगा कि इस सुनसान जगह कौन हो सकता है और कि यह घोड़ा तो सारे फूल रौंध डालेगा।

मेरी सहेली ने मज़ाक में कहा, 'घोड़े को चलने से मना कर दूंगी और कहूंगी कि वह चले नहीं बल्कि उड़े वरना मेरी सहेली का दिल टूट जाएगा?'

घोड़ा जैसे ही पास पहुंचा, धीरे हो गया। उस का सवार बोला, 'कहां जाना है?' तो मेरी सहेली थकान की मारी बोझ से पहले ही परेशान थी, फटाक से बोली, 'मेरा रेकसेट अपने घोड़े पर रख लीजिए, आगे पहुंच कर हम ले लेंगी।'

वह तत्काल मान गया और मुझसे भी बोला कि तुम भी दे दो परन्तु मैंने यह कह कर इनकार कर दिया कि अब मुझे भार उठाने की आदत हो गई है। वह मेरी सहेली का रेकसेट ले कर चला गया और वह मुझे हाथ हिला-हिला कर चिढ़ाती हुई सी चलने लगी।

कुछ दूर तक चलने पर जैसे ही पहाड़ी का मोड़ आया, घोड़े वाला कश्मीरी आंखों से ओझल हो गया। बहुत तेज़ चलने पर भी हम उसे देख न पाईं और मेरी सहेली चिन्ताग्रस्त होने लगी कि कहीं वह कश्मीरी मेरा सामान लेकर न भाग जाए। सब कुछ तो उसी में है। अब गुज़ारा कैसे होगा?

अब मेरी बारी थी। मैंने कहा, 'बड़े आराम से चलना चाह रही थी न? अब मज़ा ले!' फिर भी मैंने उसे दिलासा देते हुए कहा, 'टुथ-ब्रश छोड़ कर मैं अपना सारा सामान तुम्हारे साथ शेयर कर सकती हूं।'

इसी तरह से फिक्रमंद हम दोनों चलती रहीं और टेंट में पहुंच गईं। हाथ मुंह धो कर खाने के लिये जा रहे थे तो एक लड़की बोली, 'अंजलि, आज चपातियां लगाने की बारी आपकी है क्योंकि घोड़े वाले को पकड़ने के चक्कर में हम सबसे पहले पहुंच गई थीं।'

मन तो नहीं था पर काम तो फिर भी करना ही था। ज्यादा मन इसलिये नहीं था कि ईंटें रख कर सब करना होता था। आखिर हम दोनों ने रोटियां सेंकना शुरू कर दिया। इसी बीच एक दूसरी लड़की बोली, 'आप दोनों में से किसी का 'रेकसेट' कोई घोड़े वाला दे गया है। मेरे टेंट से ले लेना।'

मेरी सहेली आटा वहीं पटक कर टेंट की तरफ भागी और अपना 'रैचैस्ट' ले आई और खोल कर सामान 'चैक' करने लगी। सब कुछ वैसे का वैसा ही था।

सब देखने के बाद मैं ख़ुद को कोसने लगी कि हम लोग क्या क्या सोचने लगे थे और क्या कुछ बोल गए? उस बेचारे ने तो इसे खोल कर भी नहीं देखा। वह कितना अच्छा था। हमारा सामान भी ढोया और पहुंचा भी गया।

इन संस्मरणों से सवाल उठता है कि जो कश्मीरी इतना नेक है। इतना साफ दिल है। जिसके हाथ लोगों को पार लगाते हैं। फूल सींचते हैं, फूल बांटते हैं, उनके हाथ में बंदूक कैसे आ गई? यही प्रश्नचिन्ह मेरे इन संस्मरणों का आधार है। हर गोली की आवाज़ के साथ ऐसे कई संस्मरण मेरे दिलो-दिमाग पर दस्तक देने लगते हैं। प्रश्न सिर्फ एक ही होता है, क्यों? ☐

कार्यक्रम निष्पादक, विविध भारती, रेडियो कश्मीर, जम्मू-180 001

अमर तोतु

कुसुम बडयाल

एक बार मेरा भाई तीन छोटे-छोटे तोते ले आया। एक सफेद रंग का तो दो सब्ज रंग के और उन को एक पिंजरे में रख दिया। काका उन को देख कर बड़ा खुश हुआ। उसने अपनी छोटी-छोटी प्लेटें और कटोरियां निकालीं और उन में तोतों के लिए पानी और दाना डाला। वह पूरे दिन रात उन के पास ही बैठा रहे। इसी तरह काफी दिन हो गए। मेरी बहिन कहने लगी, 'इनको उड़ा देते हैं।' पर मेरा भाई कहने लगा, 'यह लव-बर्डज़, समाल पैरटस सिर्फ फीड खाते हैं और कुछ नहीं।

अगर उड़ा देंगे तो ये लोगों के घरों में ही घुसेंगे।' इस तरह उनको उड़ाने की बात खत्म हो गई।

एक दिन सभी दशहरा देखने गए हुए थे। मेरा मन किया कि इनको पिंजरे से बाहर निकालूं। मैंने उन का पिंजरा अंदर लिया और उसका ढक्कन खोल कर खुद दूसरे कमरे में चली गई। थोड़ी देर के बाद मैंने देखा तो कोई भी बाहर नहीं निकला था। दरअसल उनको बाहर निकलना आया ही नहीं। फिर एक दिन और मैं उनको अन्दर ले गई। पिंजरे का ढक्कन खोला और उनको पकड़ कर बाहर निकाला। सफेद तोता और एक सब्ज तोता तो इतना उड़े-इतना उड़े कि थक कर फिर बैठ गये। लेकिन तीसरा तोता अभी बच्चा ही था। वह उड़ना नहीं जानता था। इस तरह अब हम रोज़ाना उनको पिंजरे से निकालते और उनकी प्लेटें और कटोरियां साफ करते थे।

एक दिन मेरी बहन ने पानी डालने के लिए कटोरी बाहर निकाली और पानी लेने चली गई लेकिन पिंजरे का ढक्कन खुला छोड़ गई। तभी दो तोते जिनको उड़ना आता था वे उड़ गये। जब दूसरा तोता उड़ा और उड़ के एक वृक्ष के ऊपर बैठा तो ऐसा खूबसूरत लग रहा था जैसे इंद्रपुरी का कोई पक्षी हो।

सब से छोटा तोतु पिंजरे में रह गया। हम उस को रोज़ बाहर निकालते थे और उसकी रखवाली करते थे। धीरे-धीरे वह हमारे साथ घुलमिल गया था। सुबह मेरा सबसे पहला काम होता था उसको बाहर निकालना जिससे उसको भी बाहर निकलने की आदत पड़ गई थी। कभी अगर सुबह देर हो जाती थी तो वह शोर करने लगता था। इसी तरह कुछ दिन और गुज़र गए। अब तोतु को पिंजरे से निकलना आ गया था। लेकिन उदास रहता था क्योंकि अकेला था।

जब हम चिड़ियों को चावल डालते तो तोतु उन को चुगते देखता था। एक दिन तोतु भी उन के पास चला गया। चिड़ियों ने उसको कुछ नहीं कहा। धीरे-धीरे चिड़ियों के साथ उसकी दोस्ती हो गई। हर रोज़ सुबह बाहर निकल के वो अपनी मधुर आवाज़ में चिड़ियों को बुलाता और वे झट से आ जातीं। उसने भी चावल चुगना सीख लिया।

कुछ कौए तोतु को देखते रहते थे। इसलिए हम उसको तभी बाहर निकालते थे जब कोई उसको देखने वाला हो।

एक बार अमावस की रात थी। बिजली भी नहीं थी। सर्दी का मौसम था। अचानक पिंजरा गिरने की आवाज़ आई। हमने झटपट देखा कि बिल्ली ने उसका ढक्कन खोला हुआ है। हमें देखते ही बिल्ली भाग गई। मगर उस बेचारे की एक टांग ही जख्मी कर दी थी उसने। डाक्टर को दिखाया तो उसने दवाई दी जो हम लगाते रहे। ज़ख्म तो भर गया लेकिन वह बेचारा लंगड़ा हो गया।

काका तोतु को रोज़ स्कूल से आकर उठा लेता था। कभी उसको टोकरी में बन्द करता तो कभी कहीं रख देता और खेलता। तोतु बड़ा शोर करता था मगर धीरे-धीरे तोतु ने काके के सताने पर शोर करना बन्द कर दिया और काके का भी दोस्त बन गया।

मैं दफ्तर से आकर तोतु को ज्यादा से ज़्यादा बाहिर निकालती थी। अब वह पिंजरे के अंदर जाना पसंद नहीं करता था। जब सुबह मेरे को दफ्तर जाना होता था, मैं तोतु को कहती, 'तोतु पिंजरे में आ जा।' तोतु आता नहीं था। बड़ी मुश्किल से उसको पिंजरे में डालती थी। शाम को जब तोतु को बाहिर निकालती थी तो तोतु दौड़ कर गेट पर बैठ जाता था। ऐसा लगता था जैसे घरका रखवाला हो।

तोतु था बड़ा समझदार। एक बार क्या हुआ कि मैं कपड़े धो रही थी और उसे बाहिर निकाला हुआ था। उसने देखा कि मैं कपड़े धोने में व्यस्त हूं। वह गेट की तरफ दौड़ने लगा। मैंने देखा और कहा, 'तोतु, वापिस आ।' वह झट से वापस आ गया। उस दिन के बाद जहां भी उसको बैठाती थी वह वहीं बैठा रहता था। एक दिन मैं छत पे गई तो तोतु को भी साथ ले गई। उस का पिंजरा खोला तो झट बाहिर निकल गया। इधर-उधर घूम कर हर छत का निरीक्षण करने लगा। वहां उसको दो परनाले दिख गये। वो उनमें से बाहर झांकने लगा। तभी एक में से उसने छलांग लगा दी। मैंने झटपट उठ के देखा तो गली में जो घास थी, उसमें गिरा हुआ था। मैं उसी वक्त नीचे उतर कर गई और उस को ले आई। उसके सिर पर दो-तीन हलके-हलके थप्पड़ मारे तो वह चूं-चूं करने लगा। मैंने उस को बोला, 'एक तो तूं गल्ती करता है ऊपर से मार खाने पर चूं-चूं करता है?' वह चुप हो गया। जैसे मेरी बातें समझ रहा हो।

दूसरे दिन फिर मैं उसको ऊपर ले गई। उसके पिंजरे का ढक्कन खोल दिया। वो बाहिर निकल गया लेकिन मेरे पास ही चक्कर लगाता रहा। कुछ देर के बाद बोला, 'चूं।'

मैंने कहा, 'क्या बात है?'

वह फिर बोला, 'चूं चूं।'

मैंने कहा, 'आज तूं परनाले की तरफ मत जाना। उस दूसरी तरफ ही जाना।'

और तोतु परनाले की तरफ न गया बल्कि उसी तरफ गया जिस तरफ मैंने बोला था। मेरे को बड़ी हैरानगी हुई उसकी समझ पर। फिर मैने अपने आपको कहा, 'देख! यह एक पक्षी हो कर कैसी समझदारी से तेरा कहना मानता है।'

एक दिन क्या हुआ कि उस से बू-सी आ रही थी। काके ने मेरे पीछे से तोते को डिटोल के पानी में बहुत नहला दिया था। सब ने मना किया था, 'इतना मत नहलाओ'। काके ने कहा था 'मैंने, मम्मा से पूछा है।'

जब मैं दफ्तर से आई तो सब पता चला। तोतु बेचारा भीगा हुआ ठर रहा था। छोटी-छोटी आंखे हुई थी। तब मैंने उसको धूप में रखा तो उसको होश आई पर उसकी आंखें ठीक नहीं हुईं। डाक्टर को दिखाया तो उसने उसकी आंखों के लिए दवाई दी और कहा, 'इन के आगे एक कटोरी में पानी रख देना होता है और ये खुद ही नहा लेते है।'

अब यह तोतु बेचारा पक्षियों में तो रहा नहीं था। इसलिए इसको नहाना नहीं आता था।

हम अपने आंगन में बहुत-सारा पानी फैंकते थे तो चिड़ियां उस पानी में नहाती थीं। तोतु को भी उधर छोड़ देते थे। लेकिन तोतु को नहीं आता था कि ये चिड़ियां कैसे नहाती हैं। वो सिर्फ एक राज कुमार की तरह उस पानी में सैर करता था जैसे कोई पिकनिक पर गया हो।

एक बार तोतु को मैने बाहर निकाला था और अंदर से उसको देख रही थी। शाम हो गई पर उसको पिंजरे में नहीं डाला। वो जाली के दरवाजे के पास आया और गर्दन उठा कर अंदर देखा। मैं देख रही थी। मैंने उसको कहा, 'तोतू, अभी मैं तेरे को पिंजरे में डालती हूं।'

काका तोतु को सताता जरूर था, लेकिन उसकी काके के साथ बड़ी बनती थी। एक दिन काका गिर गया और रोने लगा। तोतु घबरा गया कि काके को क्या हो गया? वो पिंजरे में चारों तरफ फिरता रहा, और काके को देखता रहा। जब तक काका चुप नहीं हुआ वो ऐसा ही करता रहा।

एक दिन मैं दफ्तर जा रही थी तो तोतु को पिंजरे में डालने लगी। मेरी बहन कहने लगी, 'मत डाल। मैं इसको देखुंगी।' वह उसकी खेलें चिड़ियों के साथ देखती रही। इतने में उसे मां ने बुला लिया। वो चली गई। कुछ देर के बाद उस को याद आया कि तोतु बाहर है। वो उसको देखने आई तो देखा कि तोतु अपने पिंजरे के साथ खेल रहा है। मेरी बहिन फिर अन्दर चली गई और बातों में व्यस्त हो गई। तभी उस को फड़-फड़ की आवाज़ सुनाई दी तो उसको तोतु की याद आई। वो तोतु को देखने चली गई। देखा तो तोतु उधर नहीं था। फिर वह झटपट छत पर गई और गली में देखा। एक कौआ तोतु को लेकर चोंचें मार रहा था। मेरी बहन झटपट कौए के पीछे लगी। कौआ तोतु को पकड़ कर उड़ गया। वह उस के पीछे-पीछे गई। कौआ दूर उड़ गया। जब मैं दफ्तर से वापस आई तो देखा काका और मेरी बहन ज़ोर-ज़ोर से रो रही हैं। मैंने पूछा, 'क्या हुआ?' उन्होंने जब मेरे को सब बताया तो मैं भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। इस पर हमने सब भगवान को माथा टेका

और कहा, 'हमारे तोतु को ज़िंदा चाहे ज़ख्मी हो, मिलादो। हम उसको दवाई से ठीक कर लेंगे।' मैं और काका, उस को ढूंढने चल पड़े। यह सोचकर कि क्या पता कौए के मुंह से हमारा तोतु छूट गया हो। सभी घरों में पूछा लेकिन सब ने कहा कि हम को नहीं पता।

सुबह हो गई। एक औरत आई जिस ने हमारे तोतु को गेट पर बैठा देखा था। कहने लगी, 'उस के पंख देखे वे एक वृक्ष के नीचे मिले हैं।' इससे हम को पक्का यकीन हो गया कि तोतु मर गया है। तब दुखी मन से मैने पंडित से पूछा, 'मैं उसकी आत्मा की शांति के लिए क्या करूं?' और उसने जो कहा वो मैंने किया।

इसके बाद मैने कानों को हाथ लगाया कि आज से कोई पक्षी नहीं रखूंगी, क्योंकि इनके साथ मोह जब ये खत्म होते हैं तो बहुत कष्ट देता है। सहा नहीं जाता। 

492-ए, गांधीनगर, जम्मू (तवी)-180 004

एक संबोधन

सन्नी लाल सोनकर

हे मित्र! सविता!! सूर्य!!!
तुम्हारी यात्रा पर विराम लगने को है;
कुछ क्षणों में अंधेरा तुम्हें लील जाएगा
किसी घाती घडियाल-सा,
इसलिए ज़रा कान दो
तुम्हारा अजर अमर प्रकाश
हम आदम पुत्रों की सांझी थाती है,
प्रकाश के पावन पर्व पर कहो:
सब सुखी हों, सम्पन्न हों, निरोगी हों!
नहीं तो अंधकार
तुम्हारा बलात अपहरण करेगा।
'मैकाले का कोड'
हमारी कोई मदद नहीं कर पाएगा
न ही संविधा।
कृपया ध्यान दो!
तुम्हारे रथ का धुरा
आग उत्पन्न करता है,
समुद्री जलपरियां
रसीले-भीने-भीने गीत गाती हैं
तुम्हें आगोश में लेने को
ऊपर निहारती हैं।
उन्हें प्रतीक्षा है :
कब फेंके जाओगे
नीले अपूर्व बिस्तर से,
कब लेटोगे निढाल,
एक पूरा युग
कुछ आराम से सोएगा,
सपनों की फसल बोएगा,
प्राची के क्षितिज में
कल एक नए संदेश के दर्शन होंगे
सुख-शांति उगेगी धरा पर!

□

द्वारा डॉ० अभिनव ए. सोनकर असिस्टेंट प्रोवोस्ट, बंगला नं०-1 टी.जी. होस्टल, सीतापुर रोड, लखनऊ-3 (उत्तर प्रदेश)

शब्द

वेद राही

कितने शब्द मैदान छोड़ कर
किनारे बैठ गए
लज्जित असमर्थ
अब इन्हें कोई नहीं बोलता
इन के अर्थ
दहशत-ज़दा मुसाफिरों की तरह
लाईफ़बोटों में बैठ कर
डूबते हुए जहाज़ों को छोड़ गए हैं,

उस तरफ कितने शब्द
उछल उछल कर लाईनें तोड़ते
सिक्योरिटी-चौकिंग के लिए
[illegible] बढ़ रहे
सम्भावनाओं के नए क्षितिज तलाशने
उन का ग्लोबलाईज़ेशन हो गया है
विश्व बाज़ार की गद्दी
उन्हें आवाज़ें दे रही है,

समय का गड़ेरिया
शब्दों की भेड़ें चराता है
मौसम उन की ऊन उतारकर ले जाता है
ऊन फिर उग आती है
मौसम फिर आ जाता है,

देखो ये शब्द
दूसरे शब्दों को कैसे
पुचकार पुचकार कर
अपने पास बिठा रहे हैं
अपनी ताकत बढ़ाने के लिऐ,

उधर कितने शब्द
घात लगा कर बैठे हुए
झपट्टा मार कर
दूसरों के अर्थ छीन लेने के लिए,

कुछ शब्द
अपनी सुन्दरता से तंग आऐ हुए
हर ऐरा-गैरा हाथ मार रहा
बेमतलब,
कितने शब्द चारों पहर
नाक चढ़ा कर रखते
नखरीले, अहंकारी
किसी को मुंह न लगाते,

कई शब्द कितने स्नेही, उदार
अपने आप को पूरा खोलते
लेखकों के सामने
जैसे कोई प्रेमिका अपने
प्रेमी के सम्मुख
निर्वस्त्र हो जाए,

बहुत से शब्द तबले की
थाप के समान हैं
अर्थों के घुंघरू उन्हें घेरते, लुभाते
ये उनके पीछे जाते
दोनों उन्मत्त, विमुग्ध
एक दूसरे को छकाते
नाचते, नचाते
लगातार----

चुप रहकर भी बोलते हैं शब्द
अंधेरे में जुगनुओं की तरह
प्रार्थना में आंसुओं की तरह
प्यार में हाथों की तरह,

कितने शब्द अर्थों का भार नहीं ढोते
कितनी भाषाओं में एक जैसे होते
उस समय बोलते
जब
मां दूध पिलाती है
कोई प्रेमिका प्यार करती है...
या जब कोई व्यक्ति
डूब रहा होता है
या
जब कोई खिलाड़ी गोल करता है
या कोई गायक जब
कोई ऐसा स्वर लगाता है जिस में
उसकी आत्मा होती है,

कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जिनसे
लेखक बचते, कतराते हैं
वे शब्द
अतीत में किसी महान लेखक को
अपने स्वत्व की अंतिम बूंद
दे चुके होते हैं,

अनाड़ी हाथों में आकर
शब्द चूहों की तरह मरते हैं
कुत्ते की मौत भी,

अर्थपूर्ण शब्दों को
स्लेट पर लिख कर मिटा दो
उनके अर्थ फिर भी
बाकी रहेंगे,

शब्दों में सागर जितना
आसमान जितना अर्थ भर दो
उनका आकार उतना ही रहेगा,
वे फूलते नहीं,

पानी में दिख रहे तारों के समान
समझो शब्दों को
और उनके अर्थ
ऊपर आसमान पर झिलमिलाते देखो

शब्दों में रंग होते हैं
स्पर्श होते हैं, खुश्बू होती है
रंगों में तस्वीरें होती है,
स्पर्शों में परिचय होते हैं,
खुश्बुओं में बुलावे होते हैं

यह देखो यह शब्द
जन्म ले रहा है, कैसे
सोच की कोख में से निकल रहा है
इसे रचने वाले हाथ
कैसे सीधा कर रहे हैं इसे
कैसे नाल काटी जा रही है इसकी
कैसे दूध पीने लगा है यह। □

2 बी/35 सर्वोत्तम हाऊसिंग सोसाइटी,
इरला ब्रिज, अंधेरी, मुम्बई- 400 058

पुस्तक-समाचार

बिखरता सच दिव्या रावल का चौथा कविता संग्रह है। इसमें कवयित्री की 49 कविताएं मात्र नहीं हैं अपितु उतनी ही संख्या में इनके अनुरूप दिप्ति रामानुज तथा डायना रावल द्वारा चित्रांकन भी हैं जो इस संग्रह को और आकर्षक बनाते हैं।

दिव्या रावल की अभिव्यक्ति सरलता और सरसता का मन को छूता सांमजस्य है। इनमें सामाजिक सरोकार के साथ साथ सौंदर्य-बोध भी है।

- **बस सामने ही तो दिखता/सुख का किनारा/पतवारों का चलाना कम क्यों पड़े।**
- **घेरता कुहरा/पहाड़ियां मंदिर/सागर डूबे जा रहे/मैं डूबूं उन बूंदों में/जो पत्थर बन जाएं।**
- **आंगन में खप्पर से/पानी टप टप गिरता/भीतर दहलीज़ पर/आंसू अनराधार।**

पुस्तक : सजिल्द, प्रकाशक : डोन प्रोडक्शन्स, अहमदाबाद-9, मूल्य 80 रुपए

बिखरे मोती अवतार कृष्ण कितरू 'कोमल' की 44 हिंदी कविताओं तथा हिंदी अनुवाद सहित 7 कश्मीरी कविताओं का संग्रह है। इनमें सहज सम्प्रेषणीयता के साथ-साथ ग्रहणीयता में सुगमता आंकी जा सकती है।

- **आह! मुद्रित दृग खोल प्रिये, एक मीठी बाणी बोल देख प्रिये**
  गई निशा है, आई ऊषा है, अब पक्षी-गण की किल्लोल देख प्रिये
- **किस से कहूं/कभी ऋषि-नगरी में मेरा वास था**
  महकता प्रांगण और चमकता आवास था।
- **क्या रखा है अब इन लंगड़े चुनावों में ?/जनतंत्र हो या कोई गणतंत्र**
  सत्ता हथियाना बने गुरुमंत्र

लगता है प्रकाशक को कोई योग्य प्रूफ रीडर नहीं मिल सका है।

पस्तक : सजिल्द, प्रकाशक : सुधा पब्लिकेशन्स, जम्मू-5, मूल्य: अप्रकाशित

तीन हाइकु संग्रह

अनुभूति-कलश, कवि : रमेश कुमार त्रिपाठी, प्रकाशक : शशि प्रकाशन वाराणसी, पृ० 132 मूल्य : 50 रुपए

क्षणांश, कवि : रमेश चंद्र शर्मा 'चंद्र', प्रकाशक : मनोरमा शर्मा, अहमदाबाद, पृ० 160 सजिल्द मूल्य : 120 रुपए

कदम्ब, कवि : राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन' ; प्रकाशक : एकादश प्रकाशन, रायबरेली, पृ० 21, मूल्य : 10 रुपए

R.N.I. No. 58940/93 फरवरी 2002 Postal Reg.